ज्ञानामृत

अक्टूबर, 1989 वर्ष 25 ❋ अंक 4 मूल्य 2.00

१. **नई दिल्ली:** 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' के दिल्ली पहुंचने पर अभियान के कुछ यात्रियों ने उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा से भेंट की। यह चित्र उसी अवसर का है।

२. **जबलपुर:** 'अखिल भारतीय न्यायविद् सम्मेलन' का उद्घाटन दृश्य। उद्घाटन में भाग ले रहे हैं—न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर जी। दादी आत्म इंद्रा जी, न्यायमूर्ति गोवर्धन लाल ओझा जी, न्यायमूर्ति जी.जी. सोहनी जी, ब्र.क. ओम प्रकाश जी तथा किरण बहन।

नैतिक जागृति युवा अभियान का उद्‌घाटन करते हुए

१. **पण्जी गोवा** में पूर्व न्यायाधीश भ्राता एस.वी. नेवगी, भ्राता केशव प्रभु तथा अन्य। २. **पटना** में भ्राता राम आसरे, रीवेन्यू मिनिस्टर, बिहार, ब्र.कु. निर्मल पुष्पा तथा अन्य ब्र.कु. बहिनें। ३. **पोरबन्दर** में डॉ. सुशीला बेन, शिक्षा मंत्री गुजरात तथा ब्र.कु. सरला जी। ४. **टिरूनुलवेली:** ब्र.कु. सीता देवी, लक्ष्मी, शान्ता तथा ब्र.कु. शिवकन्या जी। ५. **सतना** में भ्राता राम प्रताप सिंह जी, विधायक तथा अन्य। ६. **राजकोट (गोंडल)** में भ्राता गोविन्द भाई देसाई नगरपालिका प्रमुख तथा अन्य। ७. बम्बई में युवा अभियान के उद्‌घाटन के पश्चात् युवा दल गेट वे ऑफ इंडिया के समीप से गुजरता हुआ। ८. ब्र.कु. दिव्या बम्बई के मेयर को अभियान से संबंधित सहयोग पत्र भरवाते हुए।

४. पिलखुआ में युवा अभियान के कार्यक्रम में बहिन गायत्री मोदी जी मुख्य अतिथि को अभियान की जानकारी देते हुए ।

१. **अम्बाला:** केंद्रीय विद्यालय में युवाओं का स्वागत दृश्य ।

२. **रायगढ़:** ग्राम लहगापाना में ग्रामवासियों द्वारा युवाओं का भव्य स्वागत दृश्य ।

३. पूर्वी दिल्ली के अभियान में भाग लेने वाले युवा **बागपत** में ।

५. नरेला (दिल्ली) में ब्र.कु. सुधा छात्रों के समक्ष नैतिक मूल्यों की व्याख्या करते हुए ।

६. **सिरोही:** राखी बंधवाने के पश्चात् कलेक्टर सिरोही,सपरिवार ब्र.कु. बहिनों के साथ खड़े हैं।

Regd. No. 10563/65-D, (E)-70

नई दिल्ली : अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान के उद्घाटन अवसर पर बहन किरण बेदी, आई. पी. एस. ने युवकों को शिवध्वज प्रदान किये। युवा बहिन-भाई, ब्र. कु. हृदयमोहिनी जी, ब्र. कु. रूक्मिणी, किरण बेदी जी मंच पर दिखाई दे रहे हैं।

मुलुन्द (बम्बई) : अभियान के युवा बहिन-भाई (बाएं से) ब्र. कु. शील इन्द्रा, ब्र. कु. आत्म मोहिनी, महाराष्ट्र के राज्यपाल, महामहिम ब्रह्मानन्द रेड्डी जी तथा आर. आदिक, उद्योग तथा कानून मंत्री महाराष्ट्र, के साथ दिखाई दे रहे हैं।

नई दिल्ली : अभियान के समापन समारोह में सारे भारत से पधारे कुछ युवा मंच पर दादी हृदयमोहनी जी के साथ खड़े हैं। इन युवा नेताओं का स्वागत दिल्ली की डी. एम. सी. की ओर से उपमहापौर बहिन अंजना कंवर ने मालाओं से किया। ।

अमृत-सूची

१.	अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान सफलता-पूर्वक सम्पन्न	१
२.	कर्म की श्रेष्ठता का माप दण्ड (सम्पादकीय)	४
३.	दीवाली, कलियुगी बनाम संगमयुगी	४
४.	शरीर और आत्मा का सम्बन्ध	५
५.	सचित्र समाचार	८
६.	सच्चे योगी का लक्षण—अपरिग्रह	९
७.	दिव्य सौंदर्य की झलक	१२
८.	अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान (सचित्र)	१३
९.	सच्ची देश सेवा	२१
१०.	श्रेष्ठ संस्कारों से जीवन संवारों	२२
११.	ईश्वरीय ज्ञान और मनोविज्ञान	२३
१२.	आ गयी सृष्टि परिवर्तन की बेला	२५
१३.	सचित्र समाचार	२७
१४.	योग और सेवा का बैलेंस	२९
१५.	वास्तविक दशहरा और सच्ची दीवाली कैसे मनाएं	३०

सूचना

प्रिय पाठक गण,

आप सभी नए साल के कलैण्डर की इन्तज़ार में होंगे। आपको सूचित किया जाता है कि कलैण्डर नए साल के शुरू होने से पहले आप के ज़ोन में पहुँच जाएगा। आपको अपने-अपने ज़ोन के मुख्य केन्द्र से प्राप्त करना होगा।

व्यवस्थापक
'ज्ञानामृत'

अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान सफलता पूर्वक सम्पन्न

नई दिल्ली : २१ अगस्त से २१ सितम्बर तक सारे भारत में प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ई० वि० विद्यालय के लगभग १००० युवा भाई बहिनों द्वारा १०० मैटाडोर तथा अन्य वाहनों के माध्यम से चलाया गया अभियान २१ सितम्बर को देहली पहुंचा। इन युवाओं के सम्मान में मावलंकर हाल में एक सार्वजनिक कार्यक्रम रखा गया। इस समारोह में देहली के उपराज्यपाल भ्राता रॉमेश भण्डारी जी ने कहा कि यदि ब्रह्माकुमारी ई० वि० विद्यालय को एक आंदोलन की संज्ञा दी जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। उन्होंने कहा कि केवल सरकार द्वारा ही कानून और ताकत के बल से ही नशाखोरी को रोका नहीं जा सकता। इसकी रोकथाम के लिये ब्रह्माकुमारी ई० वि० विद्यालय जैसी संस्थाओं की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि सभी समस्याओं की जड़ अहंकार है इसको मिटाने से ही शान्ति मिल सकती है। भ्राता गमील हमदी, क्षेत्रीय निदेशक, यू० एन० डवलपमेन्ट प्रोग्राम तथा भ्राता वराडराजन, युवा तथा खेलों के मामलों के सचिव, ने भी अपने उद्गार रखे। बहिन अंजना कंवर, उपमहापौर देहली ने युवा नेताओं का देहली नगर निगम की ओर से फूलों के हारों से तथा निगम ध्वज देकर स्वागत किया। ब्र० कु० चन्द्रिका ने पूरे अभियान की रिपोर्ट पेश की। उन्होंने बताया कि इस अभियान के दौरान ३०३७ गांव, कस्बे या शहरों में यह अभियान पहुंचा। २४४० स्कूलों, कालिजों में कार्यक्रम रखे गए। १५७२ अन्य क्लबों, संस्थाओं, मन्दिरों, जेलों आदि में कार्यक्रम हुए। कुल ४२०५४१९ लोग इस से लाभान्वित हुए। सहयोग पत्र भरने वालों की संख्या १५००३२ है। ब्र० कु० दादी हृदयमोनि जी ने अध्यक्षीय भाषण किया। उन्होंने कहा कि मानसिक शान्ति के लिये, मन की भटकन को बंद करने के लिये मन को ठिकाना देना जरूरी है। वह है शान्ति के सागर परमपिता परमात्मा तथा शान्ति धाम। मन को इस प्रकार के सकारात्मक विचारों में ठिकाने से ही मन शान्त और पवित्र होगा।

माऊंट आबू: अ.भा. नैतिक जागृति युवा अभियान के उद्घाटन के पश्चात् युवा-यात्री दादी प्रकाशमणि जी, भ्राता निर्वैर जी तथा ब्र.कु. मोहिनी जी के साथ खड़े हैं।

कर्म की श्रेष्ठता का माप-दण्ड

जब कोई व्यक्ति इस ईश्वरीय विश्व-विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने आता हैं तो पहले दो-तीन दिनों में ही उसे यह बात तो स्पष्ट कर ही दी जाती है कि पवित्रता या निर्विकार मनोवृत्ति को धारण करना और योग का अभ्यास करना हमारे पुरुषार्थ के दो मुख्य स्तम्भ हैं।

फिर, पवित्रता की व्याख्या करते हुए हम यह स्पष्ट करते हैं कि मन को, निर्विकार एवं निर्मल बनाना या विचार, व्यवहार, व्यापार, आहार आदि को सात्विक बनाना और जीवन में ब्रह्मचर्य, सन्तुष्टता, सहृदयता शीतलता एवं मधुरता, अनासक्ति एवं उपरामता, साक्षी स्थिति एवं न्यारापन, तथा नम्रता एवं निस्वार्थता रूप दिव्य गुणों को धारण करना ही पवित्रता है। योग के विषय में भी हम स्पष्ट समझाते हैं कि व्यावहारिक जीवन में आत्मा के सर्वसम्बन्ध परमात्मा से जोड़ने, उस ज्योतिस्वरूप पिता की लगन में मग्न होना अथवा ईश्वरीय स्मृति में स्थित होना ही 'सहज राजयोग' है।

हम यह मानते हैं कि पवित्रता और योग दो मुख्य ईश्वरीय वरदान हैं जिनमें सभी वरदान समाए हुए हैं। इन वरदानों को प्राप्त करने से कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता । ये दो वरदान हमारे पुरुषार्थ रूपी नाव के दो चप्पुओं के समान हैं जिनके द्वारा हम अपनी नाव को पार कर सकते हैं। यों भी कह सकते हैं कि ये दोनों पँख हैं जिनसे कि आत्मा रूपी पक्षी उड़ने में समर्थ हो जाता है और अपने धाम में जाने के योग्य हो जाता है। ये दोनों कैंची के दो फल (Blades) की तरह भी हैं जिनसे कि हम अपने कर्मों के बंधनों को अथवा विकारों की रस्सियां काट कर उनसे मुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार, 'पवित्रता' और 'योग' दोनों के इतने लाभ गिनाए जा सकते हैं और इनकी इतनी उपमाएँ दी जा सकती हैं कि जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों को मिला कर किये गये पुरुषार्थ को 'श्रेष्ठ पुरुषार्थ' कहा जा सकता है।

परन्तु हम सबको यह भी मालूम है कि अपने जीवन की व्यावसायिक या पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए भी हम सबको विविध प्रकार के कर्मों में व्यस्त रहना पड़ता है। कोई कपड़े का व्यापार करता है तो कोई मोटर-पार्टस का, कोई दफ़्तर में जाता है तो अन्य कोई केमिस्ट की दुकान करता है। अपनी आजीविका-उपार्जन के लिए किसी को भी कोई व्यवसाय करने की मना तो नहीं है परन्तु हाँ, यदि कोई कर्म, पवित्रता और 'योग' रूपी हमारे पुरुषार्थ में विघ्न रूप बनते हैं तो उन के लिए ये सोचना अथवा परामर्श लेना हमारी ज़िम्मेदारी हो जाती है ताकि हमारा वह व्यवसाय हमें ईश्वरीय वरदान लेने से वंचित न कर दे। **व्यवसाय को विघ्न की बजाय साधन बनाना अथवा अपनी योग-साधना में उसे सहयोगी बनाना ही हमारा कर्त्तव्य है। यदि वह हमारी 'पवित्रता' अथवा हमारे योगी जीवन की धारणाओं को कहीं कमज़ोर करते हुए मालूम होता है तो उस विघ्न को हटाने के लिए उपाय करना ज़रूरी है। हम यह नहीं कह सकते कि हमारा धन्धा ही ऐसा है कि उसे करते हमारी पवित्रता और योग की स्थिति उच्च हो ही नहीं सकती। यदि वास्तव में हमारे व्यवसाय आदि हमारे इस पुरुषार्थ में बाधा रूप हैं तो अवश्य ही हमें इसका कुछ हल निकालने की ओर ध्यान देना ही चाहिये।** क्योंकि जब हमने यह समझ लिया है कि 'पवित्रता' और 'योग' ही हमारा मूल एवं मुख्यतम पुरुषार्थ हैं और कि इनकी धारणा से ही हमें सर्व प्राप्तियां होती हैं तो निश्चय ही हम इन्हें तो किसी भी हालत में छोड़ नही सकते, बल्कि इनमें वृद्धि करते हुए हमने अपने मार्ग की बाधाओं को ही मिटाने का यत्न करना है।

इस प्रकार, 'पवित्रता' और 'योग' हमारी धारणाओं के मापदण्ड हैं और हमें क्या करना है तथा क्या नहीं करना—इस प्रश्न के उत्तर के लिए ये निर्णय की कसौटी भी हैं। चाहे कोई व्यक्ति घर-गृहस्थ की ज़िम्मेदारियों को निभाता है और चाहे कोई उनसे मुक्त हो, अवकाश प्राप्त हो अथवा प्रभु-समर्पित जीवन व्यतीत करता हो, उसे पवित्रता और योग रूपी पुरुषार्थ में तो नित्य प्रति आगे बढ़ना ही है। अपने घर की परिस्थितियों को अपने पुरुषार्थ के लिए रुकावट मानना या समर्पित जीवन की किसी कठिनाई को कारण मानना तो एक प्रकार से अपने पुरुषार्थ के ढीलेपन के औचित्य को सिद्ध करने की कोशिश करना है। यह तो गोया स्वयं को स्वयं हानि पहुँचाना अथवा परमात्मा से मिलने वाले अनमोल वरदानों से वंचित रखना है। यह ईश्वरानुभूति (God realization) नहीं है बल्कि परिस्थिति अनुभूति है जो कि हरेक व्यक्ति को सामान्यतः होती ही है। इसमें कोई विशेषता अथवा महानता नहीं है

और सच तो यह है कि यह 'पुरुषार्थ' की परिभाषा में शामिल ही नहीं है ।

जो कमज़ोर और विलश्रिकस्त होते हैं वे ही परिस्थितियों और रुकावटों का वर्णन किया करते हैं और इस वर्णन के साथ-साथ उन्हें अपनी असफलताओं का कारण बताते हुए वे परिस्थितियों को दोषी बताते हैं। इसके विपरीत, जो महावीर होते हैं वे परिस्थितियों से जूझकर उनको पार करते हैं। उनका वर्णन सदा सफलता के प्रसंग में किया जाता है। अत: यदि कोई माता कहती है कि उसका पति पवित्रता और दिव्य गुणों की धारणा में नहीं चलता या कोई पति कहता है कि उसकी पत्नी पवित्रता एवं योग की इच्छुक नहीं है, या कोई युवक यह बताता है कि उसके घर के दूसरे सदस्य उसकी बातों पर खिल्ली उड़ाते हैं और सहयोगी न बनकर उसके मार्ग में रूकावट डालते हैं **तो उन्हें सोचना यह चाहिये कि हम पवित्रता और योग रूपी वरदान को तो किसी भी हालत में छोड़ नहीं सकते, अत: रुकावट रूप कारणों का वर्णन करने की बजाय हम अपने घर के दूसरे सदस्यों को सहयोगी कैसे बनाएँ, या जब वे सहयोगी नहीं बनते तो हम उन द्वारा उपस्थित बाधाओं को पार कैसे करें?** ईश्वरीय निश्चय की यही निशानी है, चिन्तनशील व्यक्ति का यही चिन्ह है, सच्चे पुरुषार्थी का यही पुरुषार्थ है। रुकना उसका काम नहीं है, आगे बढ़ना ही उसका काम है।

यदि सेवा कार्य में लगा हुआ कोई गृहस्थी या समर्पित व्यक्ति, सेवा के कारण किसी संघर्ष में पड़ जाने से अपनी पवित्रता और योग की स्थिति को महान बनाने में बाधा महसूस करता है तो उसे भी चाहिए कि वह पहले अपनी स्थिति को पवित्रता एवं योग से ठीक बनाए क्योंकि श्रेष्ठ स्थिति से ही दूसरे की श्रेष्ठ सेवा भी हो सकती है। यह एक नियम है कि मनुष्य की जैसी स्थिति होती है वैसी ही उसकी कृति भी होती है अथवा जैसा रचियता हो वैसी ही उसकी रचना होती है। सेवा भी हमारा पवित्रता और योग की स्थिति को महान बनाने का एक साधन है। यदि हम उसे साधन के रूप में नहीं अपना सकते तो अवश्य ही हमारी ओर से ही उसमें कोई त्रुटि आई है जिसे निकालना ही हमारे लिए हितकर है।

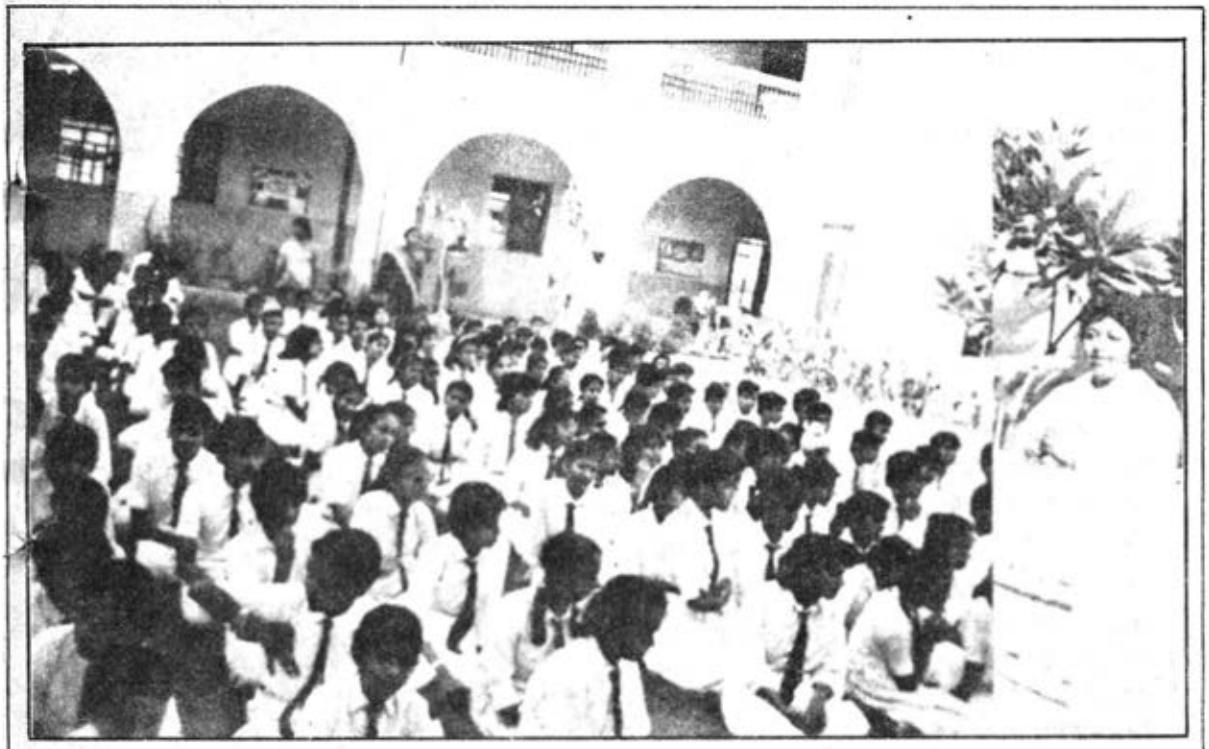

देहली (लक्ष्मी नगर) : लवली पब्लिक स्कूल में छात्र-छात्राओं के समक्ष नैतिक मूल्यों पर प्रवचन करती हुई प्रेम बहिन।

दीवाली, कलयुगी बनाम संगमयुगी

ब्रह्माकुमार सूरज प्रकाश, सहारनपुर

ये कैसी दीवाली है?

तुम कहते दीपक हँसते हैं
नव प्रकाश अब छिटक रहा है
मैं कहता हूँ कलियुगी मानव
घोर तिमिर में भटक रहा है
पूनम कहीं नहीं दिखती
बस रात अमावस काली है
ये कैसी दीवाली है?

कैसा है ये लक्ष्मी पूजन
कैसा दीपों का आयोजन
जीवन दीप में ज्ञान-घृत नहीं
बुझा-बुझा सा मानव का मन
नीरस जीवन लगता ऐसे
जैसे खाली-खाली है
ये कैसी दीवाली है?

बड़े-बड़ों के घर में चलती
रंगीनी फुलझड़ियाँ
गरीब बेचारे गिन-गिन करके
काटा करते घड़ियाँ
अमीर सोचते स्वर्ग में हम
ये उनकी खाम-ख्याली है
ये कैसी दीवाली है?

सब राजा है राज नहीं है
मुहताज है ताज नहीं है
जीवन में रस मधुर घोल दे
ऐसा कोई साज नहीं है
कैसे खुशी मनाएँ बोलो
जब रंच नहीं खुशहाली है
ये कैसी दीवाली है?

तुम कहते हो जिसे उजाला
वह है मन की अन्तर ज्वाला
दीवाली भला मनायें कैसे
सबका निकला है दिवाला
उजड़ा-उजड़ा सा गुलशन है
न दिखता कोई माली है
ये कैसी दीवाली है?

ये संगम की दीवाली है।

कोटि-कोटि जन तम से पीड़ित
उनकी ज्योति जगाने को
शिव अवतरण हुआ धरती पर
ज्ञान प्रकाश फैलाने को
नव प्रभात की छाई देखो
दिव्य अनोखी लाली है
ये संगम की दीवाली है

होती जब-जब धर्म ग्लानि
बन जाते सब देहअभिमानी
करने तब उद्धार जगत का
और करने श्रृंगार रूहों का
शिव रत्नाकर भर-भर देते
ज्ञान रत्नों की थाली है
ये संगम की दीवाली है

अन्तर्मन की करें सफाई
पोतामेल रख करें पोताई
स्नेह-मधुरता की हम सबको
बाँटें अब दिलखुश मिठाई
नये संस्कारों के नये वस्त्र हों
ये बातें बड़ी निराली हैं
ये संगम की दीवाली है।

मन का अपने दीप जला लो
आशुतोष से सब वर पा लो
भेदभाव की बात भूलकर
जो भी मिले गले लगा लो
आत्म दीप जला जिसका
वो सचमुच भाग्यशाली है
ये संगम की दीवाली है

खुशियों के दीप जलेंगे अब
और नहीं कहीं कंगाली होगी
हर घर आँगन मुस्काएगा
अब सच्ची दीवाली होगी
नया सवेरा आयेगा अब
रात बीतने वाली है
ये संगम की दीवाली है।

सिकन्द्राबाद (आ० प्र०): ब्र० कु० लीला महामहिम भारत के राष्ट्रपति भ्राता आर० वेंकटरामन जी को पावन राखी बांधती हुई।

दिल्ली– मेयर माननीय महेंद्र सिंह साथी जी को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. सुधा बहन। साथ में खड़े हैं ब्र.कु. त्यागी जी तथा ब्र.कु. रानी बहन।

भरूच– भ्राता हरिसिंह माहिडा, पंचायत मंत्री, गुजरात को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. प्रभा बहन।

शरीर और आत्मा का संबंध

चैतन्य मनुष्य –शरीर और आत्मा का मिला-जुला रूप है। शरीर स्थूल और दिखाई देने वाला है। आत्मा सूक्ष्म और अदृश्य है और केवल बुद्धि से समझी जा सकती है। जब तक आत्मा और शरीर साथ-साथ हैं तब तक दोनों ही क्रियाशील हैं। एक दूसरे से पृथक होने पर दोनों ही निष्क्रिय हो जाते हैं। शरीर से आत्मा के पृथक हो जाने पर न केवल यह पार्थिव शरीर एक मिट्टी का ढेर दिखाई पड़ता है बल्कि इससे अलग हुई आत्मा भी कुछ कार्य नहीं करती। **'क्रियाशील'** (active) होने के लिए शरीर और आत्मा दोनों ही एक दूसरे पर आश्रित हैं। तब यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि जब आत्मा और शरीर परस्पर आश्रित हैं तो इनमें से किसे प्रमुख और किसे गौण मानना चाहिये।

प्रमुख और गौण का निर्णय आवश्यक और लाभप्रद समझा गया क्योंकि आज समाज में एक वर्ग है जो समझता है कि आत्मा शुद्ध होने पर शरीर को सब प्रकार का सुख स्वतः ही प्राप्त होगा। आत्मा की अपवित्रता के कारण ही शरीर द्वारा दुःख मिलता है। दूसरे वर्ग का विचार है कि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता–'भोजन, वस्त्र और आवास' है। इस आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर, आर्थिक समस्या का समाधान होने पर, मनुष्य स्वतः ही चरित्रवान बनेगा। वे गाते हैं:–

भरा हो पेट तो, संसार जगमगाता है।
लगी हो भूख तो, ईमान डगमगाता है।।

इनका कहना है कि पहले समाज से गरीबी को दूर किया जाये फिर फुरसत से आध्यात्मिक बातों पर समय 'नष्ट' किया जाये। व्यक्तिगत रूप से भी मनुष्य कहते हैं कि पहले बाल-बच्चों के भरण-पोषण की व्यवस्था कर लूं फिर ईश्वरीय ज्ञान और योग की ओर ध्यान दे सकूंगा। इन विरोधी विचारों के संदर्भ में ही आत्मा और शरीर के सापेक्षिक महत्व को स्पष्ट करना ही इस लेख का अभिप्राय है। इसके लिए यह देखना लाभप्रद होगा कि **आत्मा** और **शरीर** आपस में किस सहयोग और सम्बंध से काम करते हैं और इनमें से प्रत्येक का **'अधिकार क्षेत्र'** क्या है।

शरीर में आत्मा का अस्तित्व

शरीर में आत्मा का स्थान जानने के पहले यह स्पष्ट होना आवश्यक है कि 'आत्मा' शब्द से क्या तात्पर्य है। कई बार एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों और रूपों में समझते हैं परंतु उस रूप और अर्थ को महत्व न देते हुए वे शब्द के विवाद में पड़कर समय भी नष्ट करते और मूल विषय से भी दूर चले जाते हैं, इसलिए यहां यह बताना आवश्यक है कि मनुष्य में जो **'मन, बुद्धि और संस्कार'** है उसी के लिए सामूहिक रूप में आत्मा शब्द का प्रयोग है। मन, बुद्धि और संस्कार शब्दों से और उनके द्वारा प्राप्त अनुभूतियों से सभी मनुष्यात्मायें इतनी ही परिचित हैं जितनी शरीर के स्थूल अंगों से। जैसे इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि हाथ, पांव, नाक, कान आदि मनुष्य के साधारण अंग हैं वैसे ही इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक मनुष्य के पास मन, बुद्धि और संस्कार हैं और यह भी कि मनुष्य के क्रिया-कलापों में इनका प्रमुख स्थान है। फिर जब हम कहते हैं कि मन, बुद्धि और संस्कार ही आत्मा है तो इस बात से कौन इंकार करेगा कि मानव के व्यक्तित्व में आत्मा का प्रमुख स्थान है। इस बात की ओर ध्यान विशेष इसलिए खिंचवाना पड़ता है क्योंकि बहुतेरे आत्मा के अस्तित्व में ही संदेह करते हैं। परंतु उनके संदेह के पीछे वास्तव में आत्मा की वह परिभाषा है जिसमें आत्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता और मात्र द्रष्टा बताया गया है। इस परिभाषा वाली आत्मा को न हम मानते हैं और न उसका वर्णन यहां है। जिस किसी का भी ऐसे अकर्त्ता, अभोक्ता आत्मा के अस्तित्व में विश्वास हो वह उसके अस्तित्व को कैसे सिद्ध कर सकेंगे, उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं तो मनुष्य में मन, बुद्धि और संस्कार होने की ही बात कह रहा हूं और इस अर्थ में ही यहां पर आत्मा और शरीर के सम्बंध का विश्लेषण होगा।

कर्म और कर्मफल

मानवमात्र के जितने भी कार्य चलते हैं वे सभी मन और बुद्धि के संकल्प-विकल्प और प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष निर्णयों के आधार पर ही होते हैं। जिसका जैसा संस्कार होगा उसके मन में संकल्प-विकल्प भी वैसा ही उठेगा। जिसकी जैसी बुद्धि होगी, वैसा ही उसका निर्णय होगा। इन संकल्पों से ही प्रत्येक प्राणी अपने दृश्य और अदृश्य सृष्टि की रचना करता है और बुद्धि अनुसार उस सृष्टि की उचित अथवा अनुचित पालना करता है और तदनुरूप ही उसे सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति की अनुभूति होती है। स्मरण रहे कि यह अनुभव करने वाली भी स्वयं आत्मा ही है। कहने में आता है मन शान्त है अथवा मन अशान्त है। शरीर के लिये शान्ति और अशान्ति शब्दों का प्रयोग नहीं होता क्योंकि इस अनुभव का सम्बंध सीधा मन से है। 'सुख' का सम्बंध अवश्य **शरीर** से है परंतु उसमें भी शरीर केवल **'माध्यम'** ही होता है। शरीर के किसी भी ज्ञानेन्द्रिय अथवा कर्मेन्द्रिय द्वारा प्राप्त सुख का अनुभव भी मन को ही होता है। रात्रि के विश्राम द्वारा शरीर को मिले सुख का अनुभव निद्रा अवस्था में शरीर को नहीं मिलता वरन् यह जागृत अवस्था आने पर मन और

बुद्धि ही अनुभव करती है। जागृत अवस्थाओं में भी शरीर की पीड़ा अथवा सुख, जीभ का रस, कान का रस, त्वचा का रस अथवा नेत्रों का रस भी मन को ही मिलता है। न केवल मनुष्यों के कर्मफल का सुखदायी अथवा दुःखदायी अनुभव मन और बुद्धि अथवा आत्मा को होता है बल्कि शरीर द्वारा किये जाने वाले सभी कर्मों की प्रेरणा अथवा आज्ञा भी आत्मा ही देती है। बिना आत्मा के बुद्धि रूप की आज्ञा के यह शरीर कोई कार्य नहीं कर सकता। फिर यह आज्ञा कभी चेतन बुद्धि (Conscious mind) द्वारा तो कभी अवचेतन बुद्धि (Sub-conscious mind) द्वारा दी जाती है। पर हर कर्त्तव्य के पीछे बुद्धि की आज्ञा आवश्यक है। किये हुए कर्मों का तत्कालिक प्रभाव तो मन-बुद्धि पर होता है परंतु दीर्घकालिक रूप में इसका प्रभाव संस्कार पर पड़ता है और नये संस्कार का जन्म होता अथवा पुराने संस्कार में परिवर्तन आता है। इस प्रकार आत्मा ही शरीर द्वारा सर्व कर्म कराने वाली व शरीर द्वारा किये हुए कर्मों का फल भोगने वाली है। कर्त्ता और भोक्ता आत्मा ही है। शरीर केवल माध्यम का काम करती है। परंतु यह माध्यम भी एक 'आवश्यक माध्यम' है।

आत्मा का शरीर से योग और वियोग

सृष्टि के सभी पदार्थों (Compound) के समान ही मानव शरीर भी भिन्न-भिन्न तत्वों (Elements) से मिलकर बनता है। इस शरीर के गठन में जहां अन्य अनेक तत्वों का योगदान होता है वहीं इसे (Active) क्रियाशील रूप देने के लिये विचार और भावना (Thoughts and emotion) जैसी भी किसी शक्ति (Energy) अथवा तत्व (Element) की आवश्यकता होती है। यह विचार और भावना शक्ति जड़ तत्वों में नहीं होती अतः वे इसे प्रदान भी नहीं कर सकते और इनके बिना हम चैतन्य मनुष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह बात दूसरी है कि प्रत्येक प्राणी के विचार और भावनाओं का विकास (Development) का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। इस विचार और भावना शक्ति अथवा बुद्धि और मन को ही सामूहिक रूप में 'आत्मा' शब्द दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ **मानव के निर्माण अथवा जन्म में आत्मा का शरीर के साथ सम्बंध जोड़ना आवश्यक है और जब मनुष्य की मृत्यु होती है उस समय आत्मा उसमें से निकल जाती है क्योंकि मृत शरीर में 'विचार और भावना' जैसी कोई चीज शेष नहीं रहती।**

पिण्ड पहले या आत्म-बिन्दु

इस प्रसंग में इस बात पर भी विचार कर लेना अनावश्यक न होगा कि पहले शरीर के अन्य तत्व मिलकर शरीर पिण्ड बनाते हैं और तब आत्मा उसमें प्रवेश करती है या 'आत्म-तत्व' के चारों ओर 'शरीर-तत्व' आते रहते हैं और शरीर के निर्माण में 'आत्मा' केंद्र बिंदु (Nucleus) का काम करती है। इसी प्रकार मृत्यु के समय आत्मा शरीर को छोड़ती है अथवा शरीर तत्व आत्मा को छोड़कर जाते हैं। इस अनुसंधान में इतनी बात तो प्रारंभिक रूप में आसानी-से ही समझी जा सकती है कि मृत्यु के समय जो क्रम 'शरीर-तत्वों' और 'आत्म-तत्व' के बिछुड़ने का होगा वही क्रम जन्म की क्रिया में उनके मिलने का होगा। यदि जन्म के समय आत्मा केंद्र बिंदु (Nucleus) का काम करती होगी तो अवश्य ही मृत्यु के समय भी उसका वही रूप होगा। यदि आत्म-तत्व के पास शरीर तत्व स्नेहवश अथवा आकर्षण वश आकर चैतन्य शरीर अथवा जीवात्मा का गठन करते हैं तो अवश्य ही उनके आत्म बिंदु का साथ छोड़ने से ही 'मृत्यु' आती होगी। क्योंकि योगविधि (Integration process) जैसा ही विपरीत दिशा में प्रयोग विधि (Disintegration process) होता है। शरीर निर्माण का कार्य तो माता के गर्भ में होता है और उसे समझने में साधारण मनुष्य को कुछ कठिनाई भी हो सकती है परंतु **'मृत्यु की क्रिया'** और उस समय में शरीर की अवस्था तो हम स्थूल नेत्रों से भी देख सकते हैं, इसलिए हम मृत्यु क्रिया (Disintegration process) को ही पहले समझने का प्रयत्न करेंगे और उसे समझ लेने पर **'जन्म क्रिया'** (Integration process) सहज ही समझा जा सकेगा।

मृत्यु के समय शरीर तत्वों द्वारा गठित शरीर तो हमें सामने दिखाई पड़ता है परंतु वह विचार और भावना शून्य होने के कारण निष्क्रिय और निष्प्राण है। उसमें आत्मा नहीं है परंतु आत्मा के निकल जाने पर भी शरीर तत्व आपस में मिले रहते हैं जिन्हें फिर अग्निदाह द्वारा अलग किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि शरीर तत्व आत्मा को नहीं छोड़ते बल्कि आत्मा ही शरीर से अपना सम्बंध विच्छेद करती है। इससे भी यह स्वयं सिद्ध है कि मानव निर्माण में भी शरीर तत्व आत्म-बिंदु के चारों ओर एकत्रित होकर शरीर पिण्ड का निर्माण नहीं करते बल्कि वे स्वयं ही पहले आपस में मिलकर पिण्ड निर्माण करते हैं और वह पिण्ड संसार की आत्माओं में से जिस आत्मा के संस्कार और सम्बंध के अनुकूल होता है वह उसमें प्रवेश करके चैतन्यता (Consciousness) प्रदान करती है। (यहां पर चैतन्यता का अर्थ Life से नहीं बल्कि Consciousness से है)। यही क्रिया विपरीत दिशा में मृत्यु के समय होती है और उसमें से पहले आत्मा अपनी चैतन्यता (Consciousness) सहित अलग हो जाती है तत्पश्चात् शरीर का विघटन (Decomposition) होता है और तत्व-तत्व बिखर जाते हैं।

जब कभी हत्या, आकस्मिक दुर्घटना आदि से मृत्यु होती है तो यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या दुर्घटना के पहले आत्मा निकल गई जो तत्काल मृत्यु हो गई? विवेक और अनुभव कहता है कि पहले शरीर के अंग बेकार हुए फिर आत्मा निकली और मृत्यु हुई। परंतु इससे उस सत्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि पहले आत्मा निकलती है जिससे ही मृत्यु होती है और उसके बाद शरीर तत्व अलग होते हैं। इसको ठीक रीति से ग्रहण करने के लिए यह समझना आवश्यक है कि शरीर के अंगों का अयोग्य (Incapacitated) होना एक बात है

और उन अवयवों को बनाने वाले तत्वों का बिखर जाना (Disintegration) दूसरी बात है। अयोग्यता (Incapacitation) और तात्त्विक बिखराव (Disintegration) का अंतर समझ लेने पर यह गुत्थी सहज सुलझ जावेगी। मनुष्य का निर्माण और विनाश दो खण्ड में न होकर तीन खण्ड में होता है। निर्माण में पहले (१) शरीर-तत्व (Physical elements) मिलकर (Integrate) शरीर का पिण्ड बनाते हैं। फिर (२) उसमें आत्मा प्रवेश करती है और अंत में (३) आत्मा के अंग अपना क्रियाशील (Active) रूप लेकर आत्मा के आदेशानुसार कार्य करते हैं जिसे हम 'जीवन' कहते हैं। मृत्यु के समय यह क्रिया विपरीत दिशा में होती है। पहले (१) शरीर के अंग आत्मा के आदेशानुसार कर्म करने के अयोग्य (Incapable) हो जाते हैं। फिर (२) उस शरीर से आत्मा निकल जाती है और अंत में (३) शरीर के तत्व अलग होते हैं (Physical elements disintegrate)। यह स्मरण रहे कि 'आत्मा' शरीर में अवयव अथवा अंग (Compound form) में नहीं रहती बल्कि वह तत्व रूप में ही सारा कार्य करती है। मन, बुद्धि और संस्कार अथवा भावना, विचार और अनुभव संग्रहीत करना उसका अपना गुण है। यह कोई उसका अंग नहीं। अतः अन्य तत्वों की भांति न वह (Integrate) करती है न (Disintegrate) वह तो प्रवेश करती और निकलती है। पिण्ड बनने के बाद वह प्रवेश करती और पिण्ड नष्ट होने पर वह उसे छोड़ देती है। तो इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मा के शरीर में होने पर ही मनुष्य में क्रियाशीलता (Activity) आती है और आत्मा शरीर में तभी तक रहती है जब तक कि शरीर उसके इस क्रियाशील रूप को कायम रखने में सहयोग देता है। इससे स्पष्ट है कि 'जीवात्मा' के अंदर 'आत्मा' को राजा का स्थान प्राप्त है। उसके ही आदेशों पर शरीर द्वारा सारे कर्म होते हैं। वह अपनी योग्यतानुसार अथवा संस्कारानुकूल पिण्ड में प्रवेश करती है। अपनी इच्छानुसार जीवन पर्यन्त उस पिण्ड से काम लेती है और अंत में पिण्ड के अयोग्य हो जाने पर उसे छोड़कर अन्यत्र चली जाती है।

आत्मा और शरीर का पारस्परिक प्रभाव

इस बात को समझ लेने पर कि आत्मा शरीर का राजा है, यह बात समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि जैसा 'राजा' वैसा राज्य। आत्मा की अपनी जितनी शक्ति होगी उतनी शक्ति वह शरीर द्वारा कर्मों में परिलक्षित करा सकेगी। यही नहीं बल्कि शरीर की स्वयं की सुंदरता, स्वस्थता और सौम्यता का आधार भी आत्मा की निजी अवस्था पर है। शरीर से सम्बंधित बाहरी परिस्थितियां भी आत्मा की निजी अवस्था पर निर्भर करती हैं। शरीर पिण्ड ग्रहण करते समय प्रत्येक आत्मा अपनी अवस्था अनुसार ही पिण्ड ग्रहण कर पाती है। उसमें सुंदर, कुरूप, धनवान घर अथवा निर्धन, स्वस्थ अथवा अस्वस्थ सभी बातें आ जाती हैं। शरीर में आने पर भी आत्मा अपने गुण और अवगुण अनुसार अपने लिये व दूसरों के लिये सुखदायी अथवा दुःखदायी, शान्तिपूर्ण अथवा अशान्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण करती है। यहां पर यह स्पष्ट करना हितकर होगा कि आत्मा अर्थात् मनुष्य का मन और बुद्धि केवल नैतिक नियमों और अनियमों का पुतला नहीं है जिसे हम पाप और पुण्य की संज्ञा देते हैं बल्कि उसमें वे सभी गुण और अवगुण निहित हैं जो हम इस संपूर्ण दृश्य जगत में मनुष्य के कर्मों में पाते हैं। यह कहना आवश्यक था क्योंकि प्रायः मनुष्यों का प्रश्न उठता है कि क्यों कोई धर्मात्मा शरीर से रोगी और कृषित अथवा धन से अभावग्रस्त है और दूसरा पापात्मा स्वस्थ और धनवान है। वास्तव में आत्मा में विभिन्न प्रकार की वृत्तियां और शक्तियां वैसे ही फैली हुई हैं जैसे किसी अंतरिक्ष यान में हजारों कलपुर्जे, बिजली के तार एक दूसरे से मिले-जुले फैले रहते हैं और इसी प्रकार अपने-अपने ढंग से उस यान के कार्य को प्रभावित करते रहते हैं। परंतु ऐसा सब-कुछ होते हुए भी कुछ मूल नियमों पर विशेष ध्यान देना होता है क्योंकि उनके उल्लंघन से कई अनेक बातें उसी प्रकार बिगड़ जाती हैं जैसे पाचन क्रिया दूषित होने से शरीर में अनेक बीमारियां लग जाती हैं। आत्मा के विषय में भी आत्मा का जो मूल गुण प्रेम, आनंद और शान्ति है उस पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जो आत्मा अपने इन मूल गुणों में जितने तक स्थिर है उतने तक वह सुखी है। इन मूल गुणों में दूषितता लाने वाले पंच विकारों से जो आत्मा जितने तक ग्रसित हो जाती है वह उतनी दुःखी और अशान्त रहती है। इस नियम के जो अपवाद (Exceptions) दिखाई पड़ते हैं वे वास्तव में अपवाद नहीं है। परंतु वह मनुष्य आत्मा की पूर्व अवस्था का छिपा हुआ या दबा हुआ (Latent or suppressed) अंश उसी का फल है।

उपरोक्त व्याख्या का यह अर्थ नहीं कि आत्मा का शरीर पर प्रभाव पड़ना एकपक्षीय है। नहीं। शरीर का प्रभाव मन, बुद्धि अथवा आत्मा पर पड़ता है। कहते हैं 'Healthy mind in a healthy body'। वास्तव में आत्मा और शरीर का प्रभाव एक दूसरे पर पारस्परिक वृत्ताकार रूप से होता है। पंच विकारों के प्रभाव से आत्मा के दूषित होने पर शरीर दूषित होता है और शरीर के सम्बंध में आने वाली वस्तु और व्यक्ति भी दुःख देने वाले होते हैं। जिस दुःख में मनुष्य अपना मानसिक संतुलन खोकर और ही अपनी आत्मा को पतित बनाता है। यह एक Vicious circle के रूप में चल पड़ता और मनुष्य पतन की ओर ही गिरता जाता है। समाज सतयुग से त्रेता, द्वापर और अन्ततः कलियुग की ओर बढ़ता जाता है। पतन की इस चरमसीमा पर पहले आत्मा को ही ठीक होना होता है। चरित्र सुधार की आवश्यकता सबसे पहली होती है क्योंकि अनाचार, अत्याचार, झूठ, बेईमानी, आर्थिक-सामाजिक असमानता सब चरित्रहीनता से ही उत्पन्न होकर मनुष्य को दुःखी बनाते हैं। भोजन, वस्त्र और आवास की समस्या उत्पन्न करते हैं।

(शेष पृष्ठ २६ पर)

बागपत (मेरठ): 'नैतिक जागृति युवा अभियान' के दौरान यमुना इन्टर कॉलेज के युवा विद्यार्थियों को संबोधित करती हुई ब्र.कु. आशा बहन।

पटियाला: युवा अभियान के पटियाला पहुंचने पर युवा भाई-बहिन शहर के गण-मान्य व्यक्तियों के साथ ग्रुप फोटो में।

चंडीगढ़: ब्र.कु. नीलम शिशु निकेतन हाईस्कूल में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए।

इन्दौर: 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' के उद्‌घाटन समारोह में भाषण करते हुए भ्राता तनवन्त सिंह, राज्यमंत्री स्वायत शासन म.प्र.।

सच्चे योगी का लक्षण— "अपरिग्रह"

□ बी.के. सूर्य, माउंट आबू

प्रश्न : कई बार जीवन में ऐसी अनहोनी घटना होती है कि देखने वालों को लगता है कि ऐसी श्रेष्ठ आत्माओं के साथ यह दु:खद व असहनीय घटना क्यों घटी, स्वयं शिवबाबा ने उस समय उनकी मदद क्यों नहीं की। तो हम यह जानना चाहेंगे कि लंबा समय योग-अभ्यास करने वालों को भी ऐसे कुचक्र से क्यों गुजरना पड़ता है?

उत्तर : अनहोनी घटना अर्थात् ऐसी भयावह दुर्घटना कि जिसमें मनुष्य न जिंदा रहे, न मृत या परिवार पर आने वाली लगातार आपदाएं या शरीर को लगने वाले असाध्य व कष्टदायक रोग—इन सबका आना हमारे पूर्व के पाप-कर्मों का परिणाम है। इस विश्व में कुछ भी अकारण ही घटित नहीं हो रहा है। चाहे कोई लंबे समय से योग-अभ्यास में लगा हो, परंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि ज्ञान में आने के बाद किये गये सूक्ष्म पापों का फल कहीं अधिक होता है। जो महान् आत्माएं हैं अर्थात् महान् योगी हैं, उनके शारीरिक रोग भी उन्हें अधिक कष्ट नहीं देते। यहां यह प्रश्न नहीं है कि महान् आत्माओं को व्याधियां क्यों आती हैं, प्रश्न है कि वे उन्हें कितनी सरलता से चुक्तु करते हैं। जो स्वर्ग में महान् थे, वे ही द्वापर के बाद पाप-कर्मों में अधिक समय तक प्रवृत्त रहे। इसलिए उन्हें रोग भी अधिक होते हैं।

भयानक विपदा या पीड़ा का मूल कारण—दूसरों को सताना या दु:ख देना है। उसमें भी यदि किसी ने किसी पवित्र आत्मा जो कि ईश्वर पर कुरबान है, जो योगी है, को सताया हो या उसका दिल दुखाया हो या उनके जीवन के बारे में अन्यायपूर्ण निर्णय लिया हो, तो उसके दिल से निकली आहें, दु:ख देने वालों के लिए श्राप बन जाती हैं। और तब उनसे बचना संभव नहीं है। इसलिए शिवबाबा कहते हैं बच्चे, किसी को दु:ख न दो, नहीं तो··· क्यों न हम इस महावाक्य को महामंत्र बना लें, इसके रहस्य को जान किसी को भी दु:ख न देने की प्रतिज्ञा कर लें।

परंतु मनुष्य का स्वार्थ उसे इस महापाप के गर्त में धकेल देता है। काम की तरह स्वार्थ भी पापों का मूल कारण है। स्वार्थ योगी को कर्म-बंधन में बांधता है। सेवा में या कर्मातीत होने में यह विशेष विघ्न है। जो बुद्धिमान स्वयं से स्वार्थ की जड़ें उखाड़ फेंकने में सक्षम होते हैं, उन्हें जीवन में संघर्ष नहीं करना पड़ता।

स्वार्थवश मनुष्य दूसरों के अधिकार छीन लेता है। स्वार्थवश वह दूसरों के पंख काट देता है, अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है। इससे दूसरों का दमन होता है, उनकी श्रेष्ठ महत्वांकाक्षाएं धूमिल हो जाती हैं, उनके भावी सपने विलीन हो जाते हैं, फलस्वरूप वह स्वयं को असहाय व अंधकारमय समझने लगता है।

इसमें भी विशेषकर यदि नारी जाति के प्रति ऐसा दु:खद व्यवहार होता है, तो वे आदर्श नारियां, जिन्होंने ईश्वरीय प्यार में अपना सर्वस्व बलिदान कर डाला, जिन्होंने जीवन भर के लिए पवित्रता का कंगन बांधा, देह के सम्बंधों से मुख मोड़ा और उमंगों की राह पर चरण रक्खे, उनके दिल पर क्या बीतती होगी! यदि उनके जीवन को बीच में ही असहाय करके छोड़ दिया जाए। इसका ही प्रत्यक्ष फल होता है—अनिद्रा, कष्टदायक पीड़ा या भयानक दुर्घटना।

अन्यथा जो ऋषि भगवान् की छत्रछाया में हैं, जो उनके प्यार की नजरों में हैं, जो श्रेष्ठ योगी हैं जो भगवान् के शरणागत बच्चों को सुख पहुंचाते हैं, आगे बढ़ाते हैं, जो निर्बलों को प्रोत्साहन देते हैं—ऐसे निर्मलचित्त वालों को तो सर्वशक्तिवान् परमपिता काल के गाल से भी निकाल लेते हैं। ऐसों के कष्टों से तो उसे भी कष्ट होता है। ऐसों के साथ कभी दुर्घटना हो भी नहीं सकती और ऐसे शुभचिंतकों के शारीरिक रोगों को सर्वसमर्थ शूली से कांटा कर देता है।

प्रश्न : संपूर्णता के मार्ग पर वह कौन-सी सूक्ष्म धारणा है जिसके न होने पर मन स्थिर नहीं होता अर्थात् योग में पूरी सफलता नहीं होती?

उत्तर : वह धारणा है—अपरिग्रह अर्थात् संग्रह वृत्ति का अभाव। यों तो योगी को पूर्णतया संन्यासी होना चाहिए। योग पथ पर वही साधक संपूर्णता का अधिकारी होता है, जिसका मन संपूर्ण वैराग्य से ओतप्रोत हो। यहां वैराग्य का अर्थ नीरसता नहीं। वैराग्य का तात्पर्य है कि देह व देह के पदार्थों के प्रति राग (आसक्ति) न हो। एक संन्यासी जिसने सर्वस्व त्याग दिया हो, उसके लिए राग-मुक्त होना सहज है, परंतु वे साधक जो गृहस्थ में रहते हैं, जिनके दैहिक नातों से संपर्क हैं या जो सेवा में लगे हैं, उनका व्यक्ति व वैभवों से संपर्क अवश्य रहता है, इसलिए सहज ही उनका पदार्थों में राग हो जाता है। उनके लिए ही इस धारणा का महत्व है।

हम देख सकते हैं कि वस्तुओं का संग्रह करना मनुष्य का स्वभाव बन गया है और इसका बीज है—आवश्यकता। और इस आवश्यकता का विस्तार अनन्त है। जो भी वस्तु मनुष्य के सामने आती है, उसे वह जीवन के लिए आवश्यक समझता है। इसलिए वह वस्तुओं से अपने भंडार भरता रहता है।

यों तो यदि हम सोचें कि मनुष्य को क्या नहीं चाहिए! परंतु

यदि हम त्याग-वृत्ति अपनायें, तो अनेक वस्तुओं के बिना हमारा जीवन चल सकता है। यह भी सत्य है कि आवश्यक वस्तुएं तो एक योगी को सहज प्राप्त होती ही हैं।

'संग्रह' योगी की शोभा नहीं और न ये सच्चे योगी का लक्षण है। क्योंकि यदि कोई साधक संग्रह करने की इच्छा रखता है तो उसमें संपूर्ण ज्ञान का अभाव ही माना जाएगा और उसकी संग्रह वृत्ति से यह भी स्पष्ट है कि उसे योग का संपूर्ण रस भी प्राप्त नहीं हो रहा है। क्योंकि शिवबाबा कहते हैं कि यदि किसी कर्मेन्द्रिय का रस होगा तो ईश्वरीय रस कम हो जायेगा। इसी प्रकार जिसे ईश्वरीय रस मिलता हो उसके स्थूल रस सहज ही नीरस बन जाते हैं। खान-पान और वस्त्रों की सुंदरता की ओर ध्यान बंटना, पदार्थों में आसक्ति का प्रतीक है और ऐसी आत्मा अब भले ही अच्छी नजर आये, प्रत्यक्षता के समय सत्यता स्वतः ही प्रत्यक्ष हो जायेगी और तब यह संग्रह वृत्ति योगी के लिए नितांत कष्टदायक होगी।

अटल नियम है कि जिस मनुष्य ने जो कुछ संग्रह किया है, उसमें उसका ममत्व अवश्य ही रहेगा। फलस्वरूप योग में बुद्धि की अस्थिरता बनी रहेगी। यदि कोई कहे कि वह तो अनासक्त होकर संग्रह करता है या प्रयोग करता है तो यह असत्य है। क्योंकि योगी यदि अनासक्त है तो वह संग्रह नहीं करेगा।

प्रायः लोग इसलिए भी संग्रह करते हैं कि ये वस्तुएं समय पर काम आएंगी। यह संकल्प भी योगियों का नहीं होना चाहिए। समय पर शिवबाबा काम आयेंगे या पदार्थ··· और एक योगी तो प्रकृति का भी मालिक होता है, तो क्या प्रकृति अपने मालिक को सर्वस्व प्रदान नहीं करेगी। वास्तव में एक योगी तो वर्तमान में ही संतुष्ट रहता है क्योंकि वह जानता है कि भविष्य तो वर्तमान की ही परछाई है।

तो अपरिग्रह अर्थात् पदार्थों का इकट्ठा न करना। जो योगी ऐसी वृत्ति अपनाता है, प्रकृति उसकी दासी बन जाती है। उसे सब-कुछ समय पर स्वतः ही प्राप्त होता है। महर्षि पंतजली ने भी कहा है कि जो योगी अपरिग्रह वृत्ति अपनाता है, उसे अपने संपूर्ण पूर्व जन्मों का ज्ञान हो जाता है। यह सत्य प्रतीत होता है क्योंकि संग्रह का बोझ हमारी स्मृति को धुंधला व बुद्धि को भारी कर देता है। फलस्वरूप न तो हम अपने आदि संस्कारों का आह्वान ही कर पाते और न ही ईश्वरीय प्रेरणाएं ही प्राप्त कर पाते।

संग्रह वृत्ति वाले उड़ती कला के अनुभव से दूर रहते हैं। उनका मन भी खुशी में उड़ान नहीं भर पाता। वे सदा इच्छाओं के गुलाम बनकर रहते हैं और मुख्य बात यह भी है कि उनका बुद्धि का विकास भी रुक जाता है। यही कारण है कि शिक्षाकाल में बच्चे क्योंकि जिम्मेदारी के बोझ से मुक्त होते हैं, इसलिए उनकी बुद्धि का संपूर्ण विकास होता है, उनकी ग्रहण शक्ति भी तीव्र होती है। और एक योगी के लिए तो इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि संग्रह वृत्ति होने पर उसके मन में उच्च विचारों का आविर्भाव नहीं होगा। क्योंकि जहां सादगी है, वहीं उच्च विचार हैं जहां बाह्य दिखावा है, वहां उच्च विचार दब जाते हैं। इसीलिए तो 'सादा-जीवन, उच्च विचार' की उक्ति सत्य है। इसलिए आप देखेंगे कि बड़े-बड़े दार्शनिक, लेखक व कवि प्रायः गरीब ही हुए। और यदि कोई साहूकार हुए भी तो वे उसमें लिप्त नहीं हुए।

प्रश्न : योग-मार्ग में उन्नति के शिखर पर कौन चढ़ सकता है?

उत्तर : उन्नति के शिखर पर चढ़ने वालों को अपने को मानसिक रूप से इस प्रकार तैयार कर लेना चाहिए कि सुनेंगे, सहन करेंगे, समायेंगे, परंतु अपनी दृढ़ता को नहीं छोड़ेंगे। जैसा कि हम जानते हैं कि सत्य के मार्ग में वा प्रगति के पथ पर कुछ ज्यादा ही रोड़े होते हैं। एक प्रकार के विघ्न तो वे हैं जो अपने ही स्वभाव, संस्कारों के कारण आते हैं। परंतु दूसरे अति शक्तिशाली विघ्न वे हैं जो अपने समीपस्थ साथियों की ओर से डाले जाते हैं।

अपने स्वभाव-संस्कारों के विघ्न भी योग-पथ पर बड़ी बाधा हैं। संस्कारों में कड़कपन, स्वभाव में गर्मी, साधना पथ पर मानों कटीली राहें हैं। ऐसी स्थिति में योगी को अभ्यास में बहुत थकान होती है। क्योंकि मेहनत उपरांत भी उसे सफलता नहीं मिलती।

परंतु जब एक साधक दृढ़ता से आगे बढ़ता है और वह सोचता है कि मैं अपना योग ८ घंटे या निरंतर कर लूं तो उसे उसके ही अग्रिम साथियों द्वारा कुछ इस प्रकार के हास्यप्रद बोल सुनने पड़ते हैं कि आह, चले हैं योगी बनने, अरे भई ये तो आठ की माला में आना चाहते हैं, शायद ये तो ब्रह्मा से भी आगे जाना चाहते हैं। कोई कहते हैं—देखेंगे कि कितने दिन ये नशा चलेगा। अरे भाई, यदि इतना सहज होता तो लोगों को ५०-६० वर्ष क्यों लगते··· फिर कोई तीसरा कहता है, योग से ही थोड़े ही उच्च पद मिलता है, सेवा करो सेवा··· चुप बैठने से क्या होगा··· देखो फलाने-फलाने सेवा में कितने आगे बढ़ गये, प्रजा नहीं बनाओगे तो राजा कैसे बनोगे।

और इस प्रकार उसकी दृढ़ता की दीवारें हिलने लगती हैं। वह सोचता है कि ये ज्यादा अनुभवी हैं, बड़े हैं, जब इनसे भी आठ घंटे योग नहीं हुआ तो हमसे कैसे होगा? इस प्रकार दूसरों के बोल उसे स्वयं में संशय ला देते हैं और वह अपनी साधना को वहीं छोड़कर उन्हीं की भेड़चाल को स्वीकार कर लेता है।

इस संसार में सुनाने की शक्ति तो हर किसी में है, परंतु सुनने की शक्ति तो किसी महावीर में ही होती है। और वो

योगी जो सुनकर समा लेता है या दूसरों की आलोचना को सुनकर अपने श्रेष्ठ लक्ष्य को नहीं छोड़ता, उन्नति के शिखर पर चढ़ता है। परंतु जिसने अपनी खुशी व दृढ़ता की लगाम किसी अन्य के हाथ में दे दी, वह कभी भी एकरस नहीं हो सकता।

हां, जीवन में योग व सेवा का संतुलन अवश्य हो। हम इतने मग्न न हो जाएं कि कर्म हमारा इंतजार ही करता रहे। क्योंकि योग का संपूर्ण आनंद कर्मयोगी को ही प्राप्त होता है।

इसलिए वे योगी जो ८ घंटे योग के लक्ष्य पर पहुंचना चाहें पहले स्वयं को 'सुनने के लिए' तैयार कर लें। यदि दूसरों की लाइन से निकलकर प्रथम पंक्ति में जाना है तो आलोचना को लिफ्ट बना लें, दूसरों की हंसी को अपनी खुशी बना दें, और ग्लानि को मूर्ति पर चढ़ने वाले पुष्प बना दें, तब ही हम सबसे आगे निकल सकेंगे और तब वे सब ग्लानि करने वाले लोग हमें महिमा के पुष्प अर्पित करेंगे।

प्रश्न : वास्तव में बुद्धिमान कौन है? साधना-पथ पर मनुष्य को अपनी बुद्धि का प्रयोग कैसे करना चाहिए? और जो लोग अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करते हैं, उनके लक्षण क्या हैं?

उत्तर : आज तक विभिन्न दर्शनों में मन व बुद्धि को आत्मा की शक्ति नहीं, बल्कि प्रकृतिकृत कहा है। यह भ्रम क्यों हुआ? क्योंकि विद्वानों ने मस्तिष्क-दिमाग (Brain) और बुद्धि को एक ही मान लिया। परंतु बुद्धि आत्मा की शक्ति है और मस्तिष्क शरीर का मुख्य अंग है। यद्यपि मस्तिष्क की रचना भी अति सूक्ष्म है, यह इस देह में एक अत्यंत आश्चर्यजनक कम्प्यूटर है, परंतु बुद्धि इससे भिन्न है।

बुद्धि विवेक शक्ति है, विवेक से बुद्धि निर्णय करती है। बुद्धि ही मन को कंट्रोल भी करती है और मन को नई दिशा भी देती है। बुद्धि से ही हम दूर की वस्तुओं का या सूक्ष्म चीजों का दर्शन करते हैं। बुद्धि ज्ञान का तीसरा नेत्र भी है। इसी में मनुष्य ज्ञान द्वारा विवेक करता है।

हमें दिव्य बुद्धि, ईश्वरीय वरदान के रूप में प्राप्त हुई है। परंतु कोई उसका दुरुपयोग करके उसे नष्ट कर डालता है और कोई उसका सदुपयोग कर उसे श्रेष्ठ वरदान व अमूल्य निधि बना देता है। जो मनुष्य अपनी बुद्धि का यथार्थ प्रयोग करे—वही बुद्धिवान है।

बुद्धि रूपी अलौकिक शक्ति का प्रयोग साधना के पथ पर साधना को सफल करने में करना चाहिए। जो योगी अपनी बुद्धि को एकाग्र रख सके, वही बुद्धिवान है, और जो मनुष्य अपनी बुद्धि को तृष्णाओं के पीछे बेलगाम छोड़ दे, वह बुद्धिवान नहीं है। ऐसा व्यक्ति अपनी बुद्धि को नष्ट कर डालता है और उसके पास कुछ भी बचा नहीं रह जाता।

कई मनुष्य अपनी बुद्धि का दुरुपयोग दूसरों के अवगुण निकालने में या उन्हें गिराने में करते हैं। परंतु जो योगी इस वरदान का प्रयोग श्रेष्ठ भावनाओं के वाइब्रेशन्स फैलाने में करते हैं, जो बुद्धिवान इसका प्रयोग ज्ञान की गुह्यता को जानने में करते हैं—वे ही यथार्थ रूप से इसका प्रयोग करते हैं।

ज्ञान के इस दिव्य नेत्र में माया की धूल उड़कर पड़ती है। परंतु जो पुरुषार्थी नित्य ज्ञान-अंजन डालकर इस दिव्य नेत्र को स्वच्छ नहीं करते, उनका ये नेत्र धीरे-धीरे धुंधला पड़कर बंद हो जाता है। यह दिव्य नेत्र इन दो नेत्रों से भी मूल्यवान है। इसके महत्व को जानते हुए हमें छोटी-मोटी बातों की या परचिंतन रूपी माया की धूल इसमें नहीं पड़ने देनी चाहिए।

बुद्धि रूपी नेत्र पर यदि अहंकार का चश्मा चढ़ गया तो इस नेत्र की शक्ति शनैः-शनैः मंद पड़ जायेगी। बुद्धि का अहंकार ही बुद्धिवान का सबसे बड़ा शत्रु है। ऐसी तीव्र बुद्धि उस मनुष्य के लिए तनाव का बीज बन जाती है। फलस्वरूप जीवन रूपी गाड़ी अशान्ति की दलदल में फंस जाती है।

बुद्धिमान वे हैं जिन्होंने बुद्धिदाता परमपिता को पहचाना। बुद्धिवान तो वे हैं जिन्होंने उनकी प्रत्येक आज्ञा का आंख मूंदकर पालन किया। बुद्धिवान वे नहीं जिन्होंने स्वयं को ज्यादा चतुरमान श्रीमत में मनमत मिला दी। बुद्धिवान सदैव दूसरों की बुद्धि को भी स्वीकार करते हैं, वे नहीं जो संगठन में संघर्ष लाकर एकता की डोर को नष्ट कर डालें। बुद्धिवान वही है जो यह जानकर कि अब अंत है, संसार से अपने विस्तार को समेट लें और श्रेष्ठ अधिकार पाने में जुट जाएं। वह नहीं जो ईश्वरीय सुखों के दिन दुनियावी चक्करों में उलझकर नष्ट कर दे। बुद्धिवान वास्तव में वही है जिसकी बुद्धि सिवाय एक परमपिता के अन्यत्र कहीं भी आकर्षित न हो। जिसे उस एक की छवि के समक्ष सब-कुछ मिट्टी तुल्य नजर आवे, जो एक के ही प्यार में डूबा रहे, जिसका मन एक पर ही कुरबान हो।

बुद्धिवान वह नहीं जो तेरे को भी मेरा कहकर, मेरे-मेरे की दलदल में फंसा रहे। बल्कि बुद्धिवान तो वही है जो मेरे को भी-'हे प्रभु तेरा', ऐसा मानकर उपराम हो जाए। जिसकी बुद्धि हद से निकलकर बेहद में गई हो, वही श्रेष्ठ बुद्धिवान है, क्योंकि हदें बुद्धि के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर देती हैं।

बुद्धिवान वही है जो समय को पूर्ण रूपेण सफल करना जानता हो, वह नहीं जो अल्पकालीन प्राप्तियों के पीछे अथवा बाह्यमुखता में अमूल्य समय को गंवा रहा हो। तो जिन्हें दिव्य बुद्धि की सौगात मिली है, वे इसे संभालकर भी रखें और इसका उपयोग विश्व-कल्याण के श्रेष्ठ कार्य में भी करें। इसका दुरुपयोग करने वालों के हाथ तो केवल पश्चाताप के आंसू ही लगेंगे। याद रहे—"पवित्रता ही बुद्धि की दिव्यता है।" □

दिव्य सौंदर्य की झलक

□ ब्र.कु. प्रेम, हरिद्वार

संसार में जो महत्व सुंदरता को प्राप्त है वह किसी और गुण को प्राप्त नहीं है। इसीलिए जो महत्व आंखों को प्राप्त है वह किसी और अंग को प्राप्त नहीं है। आंखों के बारे में ही कहा गया है–"बाबा, आंखें बड़ी नियामत हैं।" यदि आंखें अथवा सौंदर्य को देखने की शक्ति अप्राप्त हो तो मानव-जीवन ही नीरस एवं फीका हो जाता है।

मनुष्य किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति की ओर सबसे पहले उसके रूप के आकर्षण में ही खिंचता है। बाजार से चंद पैसों की चीज भी खरीदनी हो तो ग्राहक उसके रंग-रूप के आधार पर ही उसकी ओर बढ़ता है। कभी न थकने वाली दृष्टि एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे दृश्य पर भटकती ही रहती है। कभी वह सुंदर चेहरों को देखती है, तो कभी चमकीले-भड़कीले वस्त्रों को। कभी फूलों की सुंदरता को निहारने लगती है तो कभी रंग-बिरंगे नजारों को। इसी सुंदरता की प्राप्ति के लिए मनुष्य करोड़ों रुपये की संपत्ति को पानी की तरह बहा रहा है। लिपिस्टिक, पाउडर, सुर्खी और न जाने कितने ही प्रकार के शृंगार प्रसाधन आये दिन बनते रहते हैं परंतु फिर भी सौंदर्य नाम की चिड़िया मनुष्य की आंखों से ओझल ही होती जा रही है। हर चेहरा चंद घड़ियों के लिए बनावटी शृंगार से चमकने लगता है और उसी पर मुंह धोने के बाद फिर से हसरत बरसने लगती है। सुंदरता के आकर्षण में न जाने कितने घराने बरबाद हो गए हैं। आज की सुंदरता कल को कचहरी के कटघरे में खड़ी तलाक ले रही होती है। यह कैसी सुंदरता है जो क्षण भर में उभरती है और क्षण भर में मिट जाती है। यह कौन-सा छल्लावा है जो जिसको प्रिय होता है उसी को अप्रिय हो जाता है। और वह कौन-सा सौंदर्य है जिसको प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति भटक रहा है। आइये, जरा हम इन सवालों पर विचार करें!

मनुष्य स्वाभाविक ही उस वस्तु की ओर लपकता है जो उसे सुख देती है। यदि सुंदरता के गुण में सुखदायक शक्ति न समाई होती तो मनुष्य कभी भी इसकी ओर न खिंचता। परंतु जैसा कि हर व्यक्ति का अनुभव है, सुंदरता अवश्य ही सुख देती है, भले ही वह सुख अल्पकाल का ही क्यों न हो। जिस सुंदरता का हम पहले जिक्र कर आये हैं वह ऐसी सुंदरता है जो सुख तो अवश्य देती है परंतु साथ-साथ दुःख भी देने लगती है। जब तक सुख की मात्रा दुःख की मात्रा से अधिक रहती है तब तक तो मनुष्य उसको पसंद करता रहता है और जब उसके दुःख की मात्रा सुख की मात्रा से अधिक होने लगती है तो वह उसे त्याग देता है। सुंदर फूल को देखकर हम उसे तोड़ लेते हैं, परंतु यदि उसमें से छोटे-छोटे कीड़े हमारे हाथ पर रेंगने लगें तो हम उसे तुरंत फेंक देते हैं। सुंदर वस्तु को देखकर हम खरीद तो लेते हैं, परंतु यदि उसकी पायेदारी और उपयोगिता में कमी दीख जाये तो उसे लौटाने का यत्न भी करने लगते है। सुंदर चेहरे का पुजारी सुंदरता के आकर्षण में फंसकर जीवन का सौदा कर लेता है, परंतु जब सुंदर मुखड़े के पीछे छिपे अवगुणों का अनुभव करता है तो उसी सुंदरता से छुटकारा पाने की सोचने लगता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि वास्तव में सौंदर्य केवल बाहरी रूप का नाम नहीं है बल्कि बाहरी रूप द्वारा भीतर के गुणों की झलक को ही सौंदर्य का नाम दिया जा सकता है। इसीलिये सुंदरता के शब्द का प्रयोग केवल स्थूल वस्तुओं के लिये ही नहीं होता बल्कि सूक्ष्म गुणों के लिये भी होता है। जहां सुंदर मुखड़े की आवश्यकता है वहां सुंदर स्वभाव और सुंदर सलीके अथवा ढंग की भी जरूरत है। मिसाल के तौर पर यदि किसी सुंदर स्त्री के स्वभाव में कड़वाहट और तीखापन है और काम-धंधा भी सलीके से नहीं करती तो उसे लोग केवल मिट्टी की मूरत ही कहेंगे। यदि किसी स्त्री का स्वभाव तो सुंदर हो परंतु काम-काज का लक्षण न हो और सूरत भी ऐसी ही हो तो वह दूसरों की ओर तो भले ही झुकती रहेगी परंतु उसकी ओर बहुत कम लोग झुकेंगे! और यदि कोई सुंदर ढंग से कार्य करने वाली स्त्री शक्ल व सूरत और अच्छे स्वभाव से वञ्चित रह गई हो तो वह अक्ल के अहंकार में दूसरों के लिए सिरदर्द बन जायेगी और दूसरे सदा ही उससे दूर रहने की सोचते रहेंगे।

इसी तरह यदि कोई व्यक्ति सुंदर भी है और स्वभाव का भी मीठा है परंतु काम-काज में सीधा है तो उसे अनाड़ी या बुद्धू ही कहेंगे। यदि कोई सुंदर और सलीकाशुआर व्यक्ति स्वभाव का अच्छा नहीं है तो लोग उसे घमण्डी कहकर उसकी निंदा करेंगे और अगर स्वभाव का मीठा और काम-काज में प्रवीण व्यक्ति शक्लोसूरत से कुरूप होगा तो उसके व्यक्तित्व में जरूर कमी महसूस होती रहेगी। इसलिये जब तक सुंदर शरीर के अंदर सुंदर स्वभाव एवं सुंदर सलीके अथवा सुंदर ढंग से कार्य करने वाली आत्मा की झलक दिखाई नहीं देगी तब तक मनुष्य सौंदर्य के अभाव में भटकता ही रहेगा। अब प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी संपूर्ण सुंदरता की प्राप्ति हो भी सकती है? और, यदि हो सकती है तो कैसे?

मनुष्य की यह भटक ही सिद्ध करती है कि किसी जमाने में वह सौंदर्य-संपन्न था। वह स्वयं भी सुंदर था और जिस वस्तु को देखता था वह भी उसे सुंदर ही दिखाई देती थी। इसी संस्कार के कारण और उसी अनुभव को फिर से प्राप्त करने के लिये उसकी आंखें सदा

(शेष पृष्ठ २६ पर)

बैंगलोर—कर्नाटक राज्य के राज्यपाल महामहिम वेंकटा-सुब्बैया को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. हृदय पुष्पा।

लखनऊ—उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम मो. उस्मान आरिफ जी को राखी बांधती हुई ब्र.कु. सीता बहन।

कटक — उड़ीसा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश डी.पी. महापात्र को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. सुशीला बहन।

बम्बई—महाराष्ट्र के राज्य-पाल महामहिम ब्रह्मानंद रेड्डी जी को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. रूक्मिणी बहन।

भुवनेश्वर — उड़ीसा के मुख्यमंत्री भ्राता जे. बी. पटनायक को आत्म-स्मृति का तिलक लगाती हुई ब्र.कु. निरुपमा बहन।

कोचीन—उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश भ्राता कृष्णा अय्यर को राखी बांधती हुई ब्र.कु. राधा बहन।

दुर्ग—मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री भ्राता मोतीलाल वोरा को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. शोभा बहन।

कलकत्ता (रायबगान)—पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री भ्राता ज्योति बसु जी को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. पूरवी बहन।

उदयपुर—मेवाड़ मण्डलेश्वर महन्त मुरली मनोहर शरण को पावन राखी बांधती हुई ब्र.कु. शील बहन।

बुडापस्ट (हंगरी)—में भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव प्रो. राकेश श्रीवास्तव को राखी बांधती हुई ब्र.कु. पुष्प पाल बहिन जी।

हिसार: 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' के युवा भाई-बहन नन्द किशोर गोयन्का, अध्यक्ष, भारतीय अग्रवाल महासभा तथा डॉ. जी.एम. वर्मा के साथ एक ग्रुप फोटो में।

हापुड़: 'नैतिक जागृति युवा अभियान' के दौरान डॉ. डी.के. वशिष्ट को ईश्वरीय सौगात देते हुए ब्र.कु. मितू बहन।

बांदा से दिल्ली: 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' के दौरान आयोजित कार्यक्रम में अभियान का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए ब्र.कु. अवधेश जी।

नाभा में राजयोग भवन की नींव रखते हुए दादी चन्द्रमणि जी।

मण्डी आदमपुर में जन्माष्टमी पर्व पर ब्र.कु. सावित्री चौ. भजनलाल, कृषि मंत्री भारत सरकार को श्रीकृष्ण का चित्र सौगात देते हुए।

बीकानेर: 'नैतिक जागृति युवा अभियान' के दौरान आयोजित एक कार्यक्रम में भाषण करते हुए भ्राता एम.एल. गुप्ता, जिलाधीश।

दिल्ली (शास्त्रीनगर) नगरनिगम सदस्य भ्राता कृष्ण शर्मा जी सहयोग पत्र भरते हुए।

दिल्ली (कृष्णा नगर): 'नैतिक जागृति युवा अभियान' का स्वागत करते हुए उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, झील के विद्यार्थी तथा प्रधानाचार्य भ्राता के.सी. शर्मा।

वरंगल में कांफ्रेंस हॉल का उद्घाटन करते हुए ब्र.कु. दादी हृदयमोहिनी जी।

लखनऊ: 'नैतिक जागृति युवा अभियान' के दौरान आयोजित कार्यक्रम में भाषण करते हुए बहन एस.एस. पांडे, प्रधानाचार्य, डिग्री गर्ल्स कॉलेज।

फरूखाबाद: संत निरंकारी मण्डल के स्वामी हरदेव सिंह जी सेवाकेंद्र पर पधारे। वे अपने विचार लिखते हुए।

मद्रास में युवा यात्री भ्राता के.एन. नेहरू ऊर्जा मंत्री, तमिलनाडु से भेंट करते हुए।

ऋषिकेश में मेडीटेशन हॉल का उद्घाटन करती हुई ब्र.कु. दादी चन्द्रमणि जी।

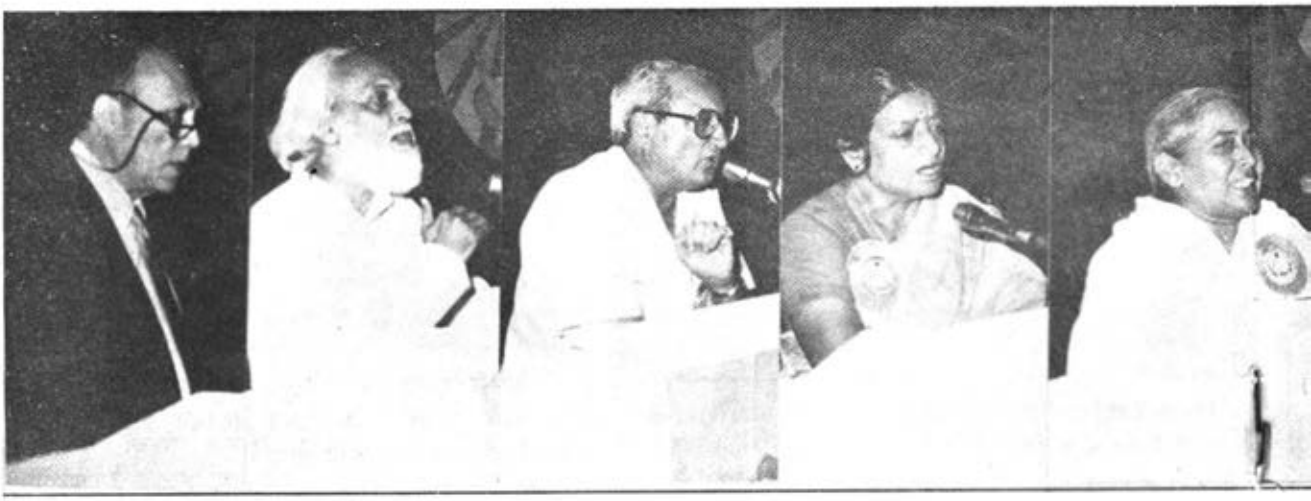

बड़ौदा: 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' का शुभारम्भ दृश्य। ब्र.कु. युवा भाई-बहनें भ्राता भीखाभाई, गुजरात के उद्योग मंत्री,उपमहापौर के साथ खड़े हैं।

नई दिल्ली (साउथ एक्सटेन्शन): युवा अभियान के अंतर्गत केंद्रीय विद्यालय के विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए युवा बहन-भाई।

नई दिल्ली: 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' के समापन समारोह में संबोधित करते हुए (बाएं से) भ्राता गमील हमदी, क्षेत्रीय निदेशक यू.एन. डेवेल्पमेंट प्रोग्राम, भ्राता एम. वाराडराजन, सचिव यूथ एफेयरज तथा खेल, भ्राता रमेश भंडारी जी, उपराज्यपाल दिल्ली, बहिन अंजना कंवर, उपमहापौर दिल्ली, ब्र.कु. चंद्रिका तथा दादी हृदयमोहिनी जी।

काकोड़ में युवा अभियान के अन्तर्गत इन्टर कॉलेज के विद्यार्थियों को सम्बोधित करती हुई ब्र.कु. विमला। (दाएं) ब्र.कु. संतोष प्राचार्य जी को ईश्वरीय सौगात देती हुई।

जालना: 'नैतिक जागृति युवा अभियान' के समारोह में कलेक्टर भ्राता आनंद कुलकर्णी जी प्रवचन करते हुए।

दिल्ली (पटेल नगर): दिल्ली नगरनिगम के सदस्य भ्राता ओम प्रकाश गुलाटी जी पश्चिमी दिल्ली के युवा अभियान के अंतर्गत कार्यक्रम में भाषण करते हुए।

दिल्ली (रोहिनी) स्थानीय वेलफेयर एसोसिएशन के प्रधान युवा भाई-बहनों का स्वागत करते हुए।

कुशालगढ़ में नैतिक जागृति युवा यात्रा में सहयोग पत्र पढ़ रही हैं ब्र.कु. भावना बहिन।

बड़ौत में इन्जीनियरिंग कॉलेज में आयोजित कार्यक्रम में ब्र.कु. आशा विद्यार्थियों को सम्बोधित करती हुई।

राजनांद गांव में 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' के पहुंचने पर युवाओं का स्वागत हुआ।

सागर: अ. भा. नैतिक जागृति युवा अभियान के अन्तर्गत रोटरी क्लब में हुए कार्यक्रम में क्लब के अध्यक्ष भ्राता सुशील मोदी जी, उपाध्यक्ष जी, संध्या बहिन तथा अन्य।

त्रीनगर (दिल्ली) डॉक्टर स्नेह मिलन में अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए डॉ. शुक्ला जी।

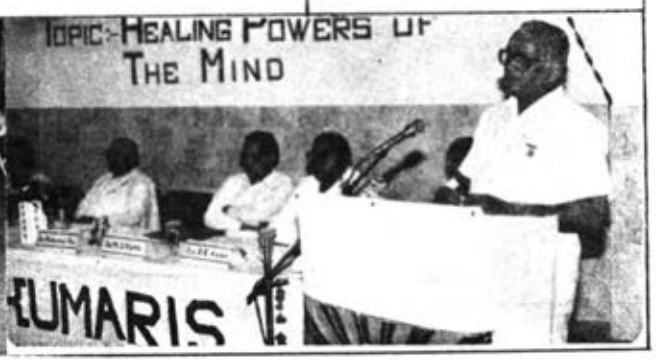

दिल्ली: मनेन्द्र शक्ति विद्यालय केशवपुरम् (दिल्ली) में कार्यक्रम के पश्चात् स्कूल के स्टाफ के साथ युवा यात्री।

हरिद्वार से अमृतसर का युवा अभियान दल **गुराया** पहुंचने पर ब्र.कु. शुक्ला, इन्दरा तथा अन्य के साथ।

भिलाई नगर: गांव में शोभा यात्रा निकालते हुए अ.भा. नैतिक जागृति अभियान दल के सदस्य।

मालवीय नगर: 'नैतिक जागृति युवा अभियान' का शुभारम्भ करते हुए भ्राता देवेन्द्र सूद जी, पार्षद।

भोपाल जोन (म.प्र.) के अ.भा. नैतिक जागृति युवा अभियान के युवा यात्रियों का सामूहिक चित्र।

नांगलोई (दिल्ली) में 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' का स्वागत करते हुए डॉ. प्रेमचन्द कौशिक, महानगर पार्षद।

बड़ौदा: वगहोडिया गांव में अ.भा. नैतिक जागृति युवा रैली का स्वागत दृश्य।

न्युडियांलुर (कोम्बेटोर): उद्योगपति भ्राता कुमारास्वामी 'तिरुनलवली से दिल्ली' युवा अभियान के यात्रियों का स्वागत करते हुए।

जोधपुर में युवा अभियान के अंतर्गत ब्र.कु. पूनम बी.एड. के कॉलेज के छात्र-छात्राओं को सम्बोधित करती हुई।

लखनऊ: अ.भा. नैतिक जागृति युवा अभियान का उद्घाटन नगर विकास राज्यमंत्री भ्राता नरेश चन्द्र श्रीवास्तव जी ने किया। वे युवा अभियान दल के साथ खड़े हैं।

अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान के उद्घाटन समारोह के अवसर पर बिहार राज्य में भ्रमण करने वाले युवा दल द्वारा शपथ ग्रहण समारोह।

दिल्ली (शक्तिनगर) सेवाकेंद्र पर आयोजित कार्यक्रम में युवाओं को सम्बोधित करते हुए भ्राता एम.सी. अग्रवाल, पूर्व मुख्य शिक्षा अधिकारी।

जामनगर: अ.भा. नैतिक जागृति युवा अभियान के समापन समारोह का दृश्य।

उत्तम नगर (दिल्ली): पश्चिमी दिल्ली की युवा रैली उत्तम नगर पहुंचने पर भ्राता मुकेश शर्मा, अध्यक्ष युवा कांग्रेस (आई) उत्तम नगर क्षेत्र स्वागत भाषण करते हुए।

सच्ची देश सेवा

☐ ले. ब्र.कु. सुषमा, जयपुर

मनुष्य का अपनी जन्मभूमि अथवा अपने देश के साथ प्यार होना एक स्वाभाविक बात है। जब भारत अंग्रेज़ों के आधीन था तो इसे स्वतंत्र कराने के लिए अनेक देशभक्तों ने कितनी कुरबानियां दीं, जेलों में कितनी यातनाएं भोगीं, कितने तरह-तरह के कष्ट सहन किये, तब कहीं जाकर देश स्वतंत्र हुआ। इतिहास के पन्ने महाराणा प्रताप, शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई जैसे सहस्त्रों देशभक्तों के उदाहरणों से भरे पड़े हैं, जिन्होंने देश की खातिर अपनी जान तक की बाजी लगा दी। प्रश्न उठता है कि क्या अपने देश को विदेशी आक्रमणकारियों के फंदे से छुड़ाना ही देशभक्ति है या इसका कुछ और भी अर्थ हो सकता है?

यदि हम भारत को अंग्रेज़ों के राज्य से स्वतंत्रता मिलने के बाद की स्थिति पर विचार करें और देखें कि जो लोग स्वयं को देश के सेवक कहलाते हैं, क्या वह देश की सच्ची और लग्न के साथ सेवा कर रहे हैं? तब आप इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि वे लोग केवल अपनी स्वार्थपूर्ति करने और सत्ता हथियाने या उसको कायम रखने में ही लगे हुए हैं। सभी जानते हैं कि आज के राजनैतिक नेता कितने भ्रष्टाचारी और चरित्रहीन बन चुके हैं। समाचारपत्रों में आए दिन किसी-न-किसी नेता या मंत्री के भ्रष्टाचार अथवा उसकी चरित्र-हीनता की खबरें छपती रहती हैं। कौन नहीं जानता कि संसद तथा विधानसभाओं में भी ये देश सेवक आपस में लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज़ इत्यादि करते ही रहते हैं, यहां तक कि कभी-कभी तो मुक्केबाजी अथवा एक दूसरे पर जूते या कुर्सियां उठा-उठाकर फेंकने तक की नौबत आ जाती है। भला ऐसे नेतागण देश की क्या सेवा कर सकते हैं?

ठीक यही हाल देश की जनता का भी है। कहने को तो हमारे देश के लोग सदा यही कहते हैं कि उनका देश से बहुत प्रेम है, परंतु उनके व्यवहारिक जीवन से इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। यही लोग अपने-अपने कर्त्तव्य का ठीक रीति से पालन न करके स्वयं को तथा देश को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने की बजाय अपने निजी हित के लिए देश को कमजोर बनाने वाले काम करते रहते हैं। व्यापारी-वर्ग चोर-बाजारी और मुनाफाखोरी करता है और सरकारी कर्मचारी काम-चोरी और घूसखोरी करते हैं। पूंजीपति मजदूरों का शोषण करते हैं तो मजदूर बात-बात पर हड़ताल कर देते हैं। किसी-न-किसी बात पर नित्य प्रति हिंसात्मक घटनाएं होती ही रहती हैं और अपने प्यारे देश की लाखों रुपयों की संपत्ति को व्यर्थ में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता है। क्या इसी का नाम देश सेवा है?

विचार करने पर आप देखेंगे कि जो व्यक्ति स्वार्थी है, वह सच्चा देश सेवक बन ही नहीं सकता क्योंकि वह अपने हित को देश के हित से अधिक महत्व देगा। वास्तव में जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और आलस्य; इन विकारों के वश में हैं वे कभी भी सच्ची देश सेवा नहीं कर सकते। इन विकारों का मूल कारण देह-अभिमान अर्थात् अज्ञानवश स्वयं को अविनाशी आत्मा न समझकर विनाशी शरीर मानते हुए जीवन में व्यवहार करना ही है। इस देह-अभिमान से छुटकारा पाने के लिए ईश्वरीय आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है। परंतु सच्चा ईश्वरीय ज्ञान केवल ईश्वर ही दे सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता इस बात की साक्षी है। स्पष्ट है कि सच्ची देश सेवा, समाज सेवा अथवा विश्व सेवा की आधारशिला रखने वाला कोई मनुष्य नहीं बल्कि इस मनुष्य सृष्टि का रचयिता स्वयं निराकार ज्योतिस्वरूप परमपिता परमात्मा ही है जिसका नाम कल्याणकारी होने के नाते 'शिव' है। परमात्मा शिव ही कल्प (५,००० वर्ष) पूर्व की तरह वर्तमान अति धर्मग्लानि के समय प्रजापिता ब्रह्मा के तन में प्रवेश करके अवतरित होकर हम भारतवासियों को सहज ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग की शिक्षा देकर फिर से वही एकता का पाठ पढ़ा रहे हैं तथा भारत की प्राचीन गौरवशाली संस्कृति की स्मृति दिला रहे हैं। परमात्मा शिव ने हमें समझाया है कि सच्ची एकता भी तभी हो सकती है जब सबकी मत और सबका लक्ष्य एक हो। ऐसा तभी संभव है जब विश्व के सभी मनुष्य-मात्र एक निराकार परमपिता परमात्मा शिव को अपना अविनाशी परमपिता मानते हुए आपस में भाई-भाई होकर रूहानी स्नेह से रहें। साथ ही सब अपने मन की लग्न उस एक परमात्मा से लगावें क्योंकि इस रूहानी याद अथवा वास्तविक राजयोग के द्वारा ही मनुष्य आत्माएं देहाभिमान तथा इससे उत्पन्न होने वाले उपरोक्त मनोविकारों से मुक्त हो सकती हैं। यही मनुष्यात्माओं के पतित से पावन, भ्रष्टाचारी से श्रेष्ठाचारी और स्वार्थी से परमार्थी अर्थात् सच्चे सेवाधारी बनने का एकमात्र उपाय है। अतः यदि हम सच्ची देश सेवा करना चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि सर्वप्रथम तो हम एक परमपिता परमात्मा शिव की लग्न में मगन रहकर निर्विकारी बनें और अन्य मनुष्यात्माओं को भी ऐसा करने का ईश्वरीय शुभ संदेश देने की रूहानी सेवा करें। केवल संकटकाल में देश की रक्षा के लिए थोड़ा-सा धन अथवा रक्त दे देना ही कोई सच्ची एवं संपूर्ण देश सेवा नहीं है। परमात्मा शिव की निरंतर याद में रहकर अपने आचरण को श्रेष्ठ बनाकर देश का एक अच्छा और उपयोगी नागरिक बनना तथा अपने श्रेष्ठ आचरण से

दूसरों को भी ऐसा बनने की प्रेरणा देना ही सच्ची देश सेवा है। देशवासियों के तन-मन-धन द्वारा थोड़ी-सी सेवा के बल से भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता तो मिल गई, परंतु देश में रामराज्य न आ सका। बल्कि, आप देखेंगे कि देशवासी दिनोंदिन और अधिक दुःखी, अशान्त और हिंसक वृत्ति वाले बनते जा रहे हैं। ईश्वरीय आध्यात्मिक सेवा के बल से ही यह पतित, विकारी और भ्रष्टाचारी कलियुगी भारत-भूमि बदलकर पुनः पावन, निर्विकारी और श्रेष्टाचारी सतयुगी देवलोक, स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ बन सकेगी। सत-त्रेतायुगी नये पावन विश्व में एक ही धर्म, एक ही भाषा और सारे विश्व पर एक ही देवी-देवताओं का चक्रवर्ती स्वराज्य (राम-राज्य) होगा। जो लोग आत्म-निश्चय और परमात्म-निश्चय में स्थित होंगे तथा ईश्वरीय मर्यादाओं का पालन करेंगे वही उस अटल, अखण्ड, निर्विघ्न, सुख-शान्ति संपन्न, जीवनमुक्त दैवी स्वराज्य में जा सकेंगे। जो मनुष्य देह-अभिमानी, विकारी, आसुरी लक्षणों वाले और ईश्वर विमुख ही बने रहेंगे, वे निकट भविष्य में परमाणु शस्त्रों, प्राकृतिक आपदाओं एवं गृहयुद्धों के द्वारा होने वाले महाभारी महाविनाश के पश्चात् धर्मराजपुरी में दंड भोगेंगे तथा उनका सतयुग-त्रेता रूपी वैकुण्ठ धाम में प्रवेश-निषेध होगा। जैसे भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता दिलवाने में जिन लोगों ने सहयोग दिया, आज उन्हीं के हाथों में देश की बागडोर है। इसी रीति जो मनुष्यात्माएं देश की सच्ची रूहानी सेवा करेंगी वही भविष्य नई दुनिया में राजपद की अधिकारी होंगी। इसलिए हमें चाहिए कि विश्व-नव-निर्माण की इस ईश्वरीय योजना में सहयोगी बनकर सच्ची आध्यात्मिक सेवा के कार्य में लग जायें। देश को अंग्रेजों से स्वतंत्र करवाने के लिए तो देशभक्तों को अपनी जानें कुरबान करनी पड़ीं परंतु परमात्मा शिव हमें मायावी विकारों रूपी रावण, जो हमारा पुराना एवं वास्तविक शत्रु है, उससे मुक्त करवाने के लिए हमारी दूषित प्रवृत्तियों की ही कुरबानी मांगते हैं। क्या हम इतनी ऊंची प्राप्ति के लिए और देश की सच्ची भलाई के लिए यह छोटी-सी कुरबानी भी नहीं देंगे? ऐसा करना ही सच्ची देश सेवा है और यही सच्ची-सच्ची देशभक्ति भी है। □

श्रेष्ठ संस्कारों से जीवन संवारों!

□ ब्र.कु. शामकांत, पूना

भारतीय संस्कृति में सुसंस्कारों का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है। भारत देश महान् देश इसलिये भी है क्योंकि यह मातृप्रधान है। माता-पिता और बच्चों का एक परिवार बन जाता है। परिवार में हर सदस्य स्वतंत्र होते हुए भी एक-दूसरे के सम्बंध में अपने कर्त्तव्य निभाते हैं। यह कुटुम्ब पद्धति भारत में यत्र-तत्र-सर्वत्र है। कुटुम्ब में ही संस्कारों की संकल्पना साकार होती है।

एक बार जग प्रसिद्ध लेखक टॉलस्टाय के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि, "संस्कारों का इतना महत्व आप क्यों रखते हैं?" टॉलस्टाय ने उस आदमी को एक लोहे का टुकड़ा दिखाते हुए कहा कि, "इसका मूल्य कितना होगा?" उस आदमी ने कहा--"होगा एक रुपया।" टॉलस्टाय ने उसी लोहे के टुकड़े को ठोक के पत्रा बना दिया और फिर पूछा अब "इसकी कीमत क्या होगी?" "होगी दस रुपये"। उस आदमी ने कहा फिर उस पत्रे से एक सुंदर कलाकृति बनाकर टॉलस्टाय ने उस आदमी को कहा—"अब इसकी कीमत क्या होगी?" "सौ रुपये होगी"। उसने उत्तर दिया, इससे आपको यह तो पता पड़ ही गया होगा कि एक रुपये के लोहे के टुकड़े की कीमत सौ रुपये तक हो सकती है। लेकिन कब...? जब उसी पर उचित संस्कार (परिवर्तन) करने के बाद, ठीक है ना?

इसी तरह हमारा जीवन भी बचपन से ही सदाचार से, सत्यता से, स्नेहयुक्त व्यवहार से, श्रेष्ठ आत्मिक सम्बंध से, नम्रता, निर-अहंकारी पन, निर्विकारी-पन से युक्त और सुसंस्कारित किया जाये तो क्या हम श्रेष्ठ महामानव नहीं बन सकते? हमें जीवन सुसंस्कारों के अलंकारों से शृंगारित करना है, न कि शारीरिक भूषणों से अथवा अमूल्य गहनों से। हमारे सच्चे गहने हैं— गंभीरता, रमणीकता, मधुरता, सदाचार, परोपकार, स्वच्छता इत्यादि दैवीगुणों से श्रेष्ठ संस्कार बनाने की आवश्यकता है।

परिवर्तन यह प्रकृति का गुणधर्म है। जीवन का दृष्टिकोण— हमें परिवर्तन को स्वीकारने का अपनाना चाहिये। जैसे कि हमारे शरीर भिन्न-भिन्न जाति-धर्म, वर्ण भेदों के उपाधियों से पहचाने जाते फिर भी हम सब मानव ही तो हैं, जानवर तो नहीं। प्रत्येक शरीर की बनावट पंच तत्त्वों से ही है। शरीरों की रचना भल भिन्नत्व प्रकट करती हो लेकिन शरीर बनने के घटक तो सभी में एक जैसे ही होते हैं। इस तरह से हमारे शरीर की उपाधियां भल भिन्न हों लेकिन शरीर रूपी वस्त्र को परिधान करने वाली तो आत्मा ही है। हम सब आत्मा रूप में एक परमपिता परमात्मा के बच्चे आपस में भाई-बहन हैं। विश्व एक बेहद कुटुम्ब है, हम सब उसमें रहने वाले कुटुम्ब के सदस्य हैं। यह संकल्पना हम अपने अन्दर सदाकाल के लिये रख देवें तो हमारा विश्व एक कुटुम्ब की भांति सुखी, समृद्ध एवं शान्ति सम्पन्न बन जायेगा। □

ईश्वरीय ज्ञान और मनोविज्ञान

मनुष्य के स्वभाव में 'प्रेम-वृत्ति' और 'कल्पना वृत्ति'—यह दो वृत्तियां मूल रूप से विद्यमान हैं। प्रेम-वृत्ति व्यवहार में माता-पिता, बहन-भाई, पति-पत्नी अथवा गुरु-शिष्य में प्यार के रूप में व्यक्त होती है। इसके अतिरिक्त जाति-प्रेम, देश-प्रेम, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अथवा प्रभु-प्रेम भी इस प्यार की वृत्ति के ही व्यापक रूप हैं। मनुष्य में यदि प्रेम भावना न हो तो संसार किस स्थिति में होगा इसकी कुछ कल्पना नहीं की जा सकती। वास्तव में यह संसार प्रेम के आधार पर टिका हुआ है। प्रेम में वह तासीर है कि मनुष्य कितने ही संघर्षों व कष्टों को खुशी-खुशी सहन कर लेता है। प्यार की एक दृष्टि जीवन में खुशियां बिखेर देती है और यदि यह प्यार की दृष्टि बदल जाए तो ज़िंदगी वीरान हो जाती है। कल्पना वृत्ति मनुष्य की प्रवृत्ति में प्रेम-वृत्ति से भी अधिक महत्व रखती है। बल्कि प्रेम में भी मनुष्य को कल्पना वृत्ति का आश्रय लेना पड़ता है। प्यार के भाव तो समय-समय पर जागृत होते हैं ही परंतु कल्पना तो मनुष्य कदम-कदम पर, क्षण-क्षण पर करता ही रहता है। सतयुग से लेकर कलियुग के अंत तक किसी भी युग में, किसी भी परिस्थिति में कल्पना के बिना मनुष्य कभी नहीं रहा है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश, जय-पराजय इत्यादि अनेक प्रकार की कल्पनाएं मनुष्य करता है। मनुष्य की कल्पनाएं कभी उसे अतीत में ले जाती हैं तो कभी वह वर्तमान या भविष्य के बारे में कल्पनाएं करता है।

प्रेम-वृत्ति और कल्पना-वृत्ति के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि मनुष्य की इन दोनों मौलिक वृत्तियों का यथार्थ एवं पूर्ण उपयोग ईश्वरीय ज्ञान मार्ग में ही होता है। हम प्रेम व कल्पना की दोनों मनोवृत्तियों को शिवबाबा के दो मूल महामंत्रों में संतृप्त होते हुए पाते हैं। प्रेम-वृत्ति से संतृप्त होने के लिए 'मन्मनाभव' और कल्पना-वृत्ति की संतृप्ति के लिए 'मद्याजी भव' के महामंत्र शिवबाबा ने हमें दिए हैं। संपूर्ण **ईश्वरीय** ज्ञान इन दो महामंत्रों की परिधि में ही समाया हुआ है, इनके बाहर तो हमारे ज्ञान का कुछ नहीं है। **'योग'** का सम्बंध **प्रेम-वृत्ति'** से और **ज्ञान** का सम्बंध **'कल्पना-वृत्ति'** से सीधा है। ईश्वरीय शिक्षा के दो विषयों 'दिव्यगुणों की धारणा' और 'जन-जन की ईश्वरीय सेवा' में से धारणा को हम योग के अंतर्गत और सेवा को ज्ञान के अंतर्गत ले सकते हैं।

प्रेम-वृत्ति का सर्वोत्तम विकास

प्रेम की वृत्ति पर यदि विशेष रूप से विचार करें, तो आप देखेंगे कि प्रेम की गहराई में मनुष्य तभी जा सकता है जब कि उसके मन-मंदिर में केवल एक ही इष्ट हो। प्रेम शब्द गौण रूप से बोध ही यह कराता है कि एक से प्यार। जहां प्रेम का व्यापक रूप होता है वहां भी सबको एक समिष्ट अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आदि के रूप में एक इकाई आरोपित कर लेने पर ही हम प्यार की तासीर को बढ़ता देखते हैं। विचार करने पर एक और स्पष्ट अनुभव होगा कि प्यार की वृत्ति का व्यास हमारे अंदर आपेक्षित सभी दैवीगुणों का स्रोत है अथवा हमारे पूर्णत्व की दिशा है। सहनशीलता, अंतर्मुखता, हर्षितमुखता, एकरस अवस्था, पवित्रता, वाणी में बल और दृष्टि में रूहानियत इत्यादि सारे के सारे गुण प्यार की वृत्ति अपने साथ-साथ विकसित करती चलती है। किंतु प्रेम की भी कुछ श्रेणियां हैं। प्रेम को जितना हम वासना से दूर ले जाते हैं उतना ही हमारे प्रेम का उन्नयन (Sublimation) होता है। यह उन्नयन भी इस बात पर निर्भर होता है कि प्रेमी का इष्ट (Beloved) कितना दिव्य है।

मनुष्य जिन चीजों से प्रेम करता है वह व्यक्ति, प्रकृति अथवा परमात्मा इन तीनों में से एक या अधिक चीजें होती हैं। मनुष्य जब मनुष्य से प्यार करता है तो इस प्यार में प्रायः स्वार्थ अथवा वासना-प्रधान होती है। किंतु इसमें भी जहां-जहां पवित्र प्रेम होता है उन प्रेमियों में हम सामान्य से बहुत अधिक गुण देखते हैं। अनेक कवियों के जीवन और उनकी रचनाओं से हम इस तथ्य का साक्षात्कार कर सकते हैं। इससे ऊपर की श्रेणी प्रकृति प्रेमियों की है। उनमें कुछ और श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं। किंतु जो परमात्मा से सच्चा प्रेम करता है उसको हम पूर्णत्व की ओर अग्रसर होते देखते हैं। अतः जितना श्रेष्ठ प्रेम-पात्र होगा उतना ही गुणों का विकास और उतना ही आनंद का सातव्य होगा। इसीलिए शिवबाबा भी कहते हैं कि—"देखो बच्चे! तुम अपने को यह विनाशी शरीर समझते हुये जब दूसरे के विनाशी शरीर से प्यार करते हो तो तुम्हारा यह प्यार भी विनाशी होता है। इसलिए तुम अपने-आपको पहचानकर अपने को अविनाशी आत्मा समझकर यदि मुझ अनादि अविनाशी परमपिता से प्यार करोगे तो तुम्हारा यह प्यार भी अनादि अविनाशी होगा।" अतः हमारे मन में जितनी भी प्यार की उमंगें हैं, जितनी भी तरह की प्यार की हसरतें हैं वह सभी हमें एक शिवबाबा के अमिट प्यार में ही लगा देनी चाहियें। मनुष्य चाहते भी हैं कि हमारा प्यार अविनाशी हो किंतु अज्ञानतावश विनाशी चीजों से प्यार कर बैठते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे दुःखी होते रहते हैं। लेकिन ईश्वरीय प्यार में सांसारिक प्यार की तरह स्वाभाविक गम, वीरानगी, अतृप्तता नहीं होती बल्कि वह तो सदैव अतीन्द्रिय सुख में प्रफुल्लित रखता है। अपने प्यार के विभिन्न प्रस्फुटित भावों को एक

सौंदर्य-बिंदु शिवबाबा पर केंद्रित (Focus) करना ही योग है। योग को योग न कहकर निरंतर याद की यात्रा कहने का बाबा का अभिप्राय सीधे प्यार से ही है क्योंकि किसी की याद का अर्थ यही है कि उससे प्यार है। इसलिए याद करने के साथ-साथ बाबा यही कहते हैं कि-"बच्चे! मीठे-मीठे शिवबाबा को अति प्यार से याद करो।" तो यह **'मन्मनाभव'** का महामंत्र हमारी प्रेम-वृत्ति के परम विकास और उससे प्राप्त होने वाले पूर्णत्व के गुप्त मनोवैज्ञानिक रहस्यों को अपने में छिपाये हुए है।

कल्पना-वृत्ति का सर्वोत्तम विकास

अब हम कल्पना-वृत्ति के बारे में विचार करते हैं। कल्पना-वृत्ति के भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों ही प्रकारों के पूर्ण पोषण के लिए सृष्टि-चक्र एवं ब्रह्माण्ड के सत्य ज्ञान के सच्चे 'स्वदर्शन चक्र' को फिराते रहने की शिक्षा बापदादा ने हमें दी है। कल्पना यदि हमारे लौकिक जीवन के भूत की ओर जाती है तो तुरंत हम उसे आत्मा के २,५०० वर्ष के स्थायी सुख-शान्ति वाले सतयुग एवं त्रेतायुगी २१ जन्मों के भूत की ओर ले जायें। इसी प्रकार यदि वर्तमान समय की किसी दुःखद घटना की स्मृति आई हो तो उस हीनभाव को अपने सतयुगी समय की स्मृति से उदासीन कर सकते हैं। यदि किसी सुखद घटना से 'अहं' जागृत होता हो तो भी सतयुगी वैभवों की स्मृति में वह अहं भाव समाप्त हो जाएगा। फिर हम विचार करेंगे कि यह सुख तो उन सुखों के सामने कौड़ी तुल्य है। बापदादा द्वारा प्रायः कलियुगी दुनिया की विभिन्न स्थितियों को बताकर तुरंत सतयुगी दुनिया की उन्हीं बातों के तुलनात्मक वर्णन बताने के पीछे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य छिपा हुआ है।

किसी वर्तमान घटना, दुःख अथवा समस्या का प्रभाव हमारे ऊपर न पड़े, उसके लिए भी बाबा हमें नशे में रहने के लिए कहते हैं। हम सर्वशक्तिवान् के बच्चे हैं। परमात्मा स्वयं हमें पढ़ा रहे हैं, हमारी तो है ही चढ़ती कला, परमात्मा मिल गया तो और क्या चाहिए। ये सब विचार हमारी वर्तमान समस्याओं से मन की रक्षा के लिए अत्यंत लाभदायक मनोवैज्ञानिक टॉनिक (Tonic) हैं।

व्यक्ति की कल्पनाओं में अधिक प्रतिशत भविष्य की कल्पनाओं की होती है, ऐसा प्रायः सभी अनुभव करते हैं। वास्तव में देखा जाय तो व्यक्ति को वर्तमान पुरुषार्थ की प्रेरणा ही भविष्य की कल्पनाओं से मिलती है। इसलिए जिसकी भविष्य की कल्पनाएं जितनी ऊंची होती हैं, जिसका जितना ऊंचा हृदय होता है, वह उतना ही अधिक कर्मशील, संयमी और प्रबल इच्छा-शक्ति वाला होता है। हम चादर में मुंह ढककर हवाई किले बनाने वाले कर्महीन व्यक्तियों की बात नहीं कर रहे हैं, किंतु हमारे कहने का भाव यह है कि यदि कल्पना श्रेष्ठ, विस्तृत और अयोजित नहीं है तो कर्मशील होते हुए भी मनुष्य का उतना विकास नहीं हो सकता। 'महापुरुष दूरदर्शी होते हैं'—इस उक्ति के पीछे मनुष्य की भविष्य की वास्तविक कल्पना की ही बात है। यह भविष्य की सभी कल्पनाएं भविष्य की किसी प्राप्ति से सम्बंधित होती हैं। भविष्य में प्राप्ति का यह लक्ष्य जितना श्रेष्ठ और जितना सतोगुणी होगा, इसके साथ-साथ जितनी ही अधिक उस लक्ष्य की प्राप्ति की लगन मन में होगी उतनी ही प्रबल कल्पनाएं भी होंगी, जो मनुष्य को उसके जीवन में प्रेरणा व दिशा देती रहेंगी। उदाहरण के लिए, यदि कोई विद्यार्थी मैडिकल कॉलेज में डॉक्टरी का कोर्स पढ़ रहा है और वह यह कल्पनाएं करता है कि एक अच्छा डॉक्टर बनकर वह देश की सेवा करेगा, धन भी खूब कमायेगा, एक कोठी भी बनायेगा, एक सुंदर-सा बगीचा भी होगा, समाज में उसकी बहुत प्रतिष्ठा होगी, इत्यादि और उसकी यह कल्पनाएं उसको रात-दिन परिश्रम करने के लिए प्रेरित करेंगी क्योंकि इन सब कल्पनाओं के साथ-साथ उसे यह विचार अवश्य आयेगा कि यह सब तभी होगा जब वह परिश्रम करके परीक्षा में अच्छे नंबर प्राप्त करेगा। यदि उसमें आलस्य के संस्कार नहीं हैं तो ये कल्पनाएं जितनी ही तीव्र और वास्तविक होंगी निश्चय ही उसे उतना ही प्रेरित करती रहेंगी और उसके जीवन को उस विद्यार्थी से कहीं अधिक सफल बनायेंगी जो जीवन में साधारण भाव से पढ़ता है या पढ़ता डॉक्टरी रहा है किंतु किन्हीं अन्य व्यसनों सम्बंधी कल्पनाएं भी करता रहता है। वह फिर उसी दिशा में अधिक सफल होगा जिसमें उसकी कल्पनाएं तीव्र होंगी। यहां भी महत्व कल्पनाओं का ही रहा।

लक्ष्य सम्बंधी कल्पनाओं की तीव्रता पुरुषार्थ में बल भरती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य ही बाबा द्वारा दिये गये 'मद्याजीभव' मंत्र के पीछे छिपा है। इसलिए बाबा ने हमें श्रेष्ठतम 'स्वर्ग की बादशाही' का वास्तविक लक्ष्य दिया है। उसके लिए बाबा ने हमें सतोगुणी कल्पना अथवा चिंतन की दिशा भी दी है कि-"बच्चे! तुम्हें सतयुग में निरोगी काया मिलेगी, लक्ष्मी बरसेगी, सोने चांदी के महल होंगे, दास-दासियां होंगी, निर्विकारी होंगे, अहिंसावृत्ति होगी, प्रकृति वश में होगी, वहां घी-दूध की नदियां बहेंगी।" तो जितनी हमारी इस भविष्य पद की प्राप्ति के लिये चिंतन अथवा कल्पना चलेगी उतना ही हम अधिक पुरुषार्थी बनेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मन्मनाभव' और 'मद्याजीभव' इन दो महामंत्रों में ही मनुष्य की सारी वृत्तियों को आश्रय मिलता है और समस्त दैवीगुणों को उत्पन्न करने की परमशक्ति इनमें छिपी हुई है। इन दोनों को हम जितना-जितना नित्य अपने व्यवहारिक जीवन में लायेंगे उतना ही हमें अपने भाग्य का सितारा चमकता हुआ दिखाई देता जायेगा। □

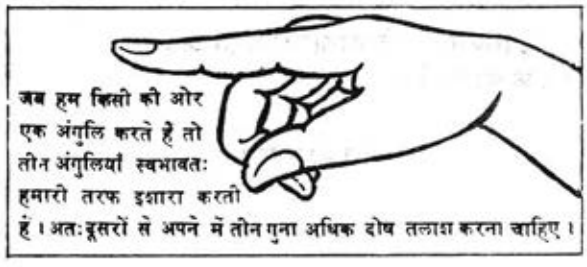

आ गयी सृष्टि परिवर्तन की बेला

ब्र.कु. भगवती प्रसाद

आज भौतिकता ने मनुष्य को अंधा बना दिया है। प्रकृति व भौतिक परिस्थितियां खतरे की लगातार घंटी बजा रही हैं पर अंधा और बहरा होने के कारण मानव उसे सुना-अनसुना कर रहा है। शायद अब मानव-सभ्यता के विनाश का खतरा दबे स्वर से स्वीकार किया जा रहा है। पर ज्ञान न होने के कारण जो भी कदम उठाये जा रहे हैं वह और ही खतरनाक साबित होते जा रहे हैं। "विनाश काले विपरीत बुद्धि" का जो गायन है, स्पष्ट चरितार्थ हो रहा है। विचार करें, सृष्टि परिवर्तन का समय तो नहीं आ गया?

प्राकृतिक परिवर्तन

आज प्रकृति भी भयावह स्थिति में पहुंच गयी है। वैज्ञानिकों के कथन अनुसार हमारी पृथ्वी इस समय 'ग्रीन हाउस' में आ गयी है अर्थात् कार्बनडाईआक्साईड व अन्य गैसों की अधिकता के कारण विश्व का औसत ताप बढ़ रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार कुछ वर्षों में यह ताप १° सी. से ४° सी. तक बढ़ सकता है। ध्रुवों का ताप तो इस औसत ताप का ४ से ७ गुणा बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में ध्रुवों की बर्फ पिघलकर विनाशकारी प्रलय पैदा कर सकती है।

पृथ्वी के चारों ओर ओजोन का रक्षा कवच तेजी से नष्ट हो रहा है जिसके कारण सूर्य से आने वाली घातक परावैंगनी किरणें कैंसर व अन्य असाध्य बीमारियों द्वारा भीषण प्रकोप फैला सकती हैं जिसके उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव से सहज अनुमान लगाया जा सकता है। भूमिगत जल भी प्रदूषित होता जा रहा है। उर्वरकों व कीटनाशकों का खाद्य पदार्थों व अनाजों पर स्पष्ट कुप्रभाव देखा जा रहा है। प्रदूषण इस हद तक बढ़ गया है कि मां का दूध भी प्रदूषण से मुक्त नहीं है।

असाध्य बीमारियां

आज कैंसर, एड्स व अन्य नई-नई जानलेवा बीमारियां मानव के सामने एक चैलेंज हैं। विज्ञान व प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ बढ़ रहे प्रदूषण के कारण मानव शरीर की रोग प्रतिकारक क्षमता में निरंतर कमी आती जा रही है। अभी बच्चों में बुढ़ापा ला देने वाले प्रोजोरिया नामक असाध्य रोग का पता चला है। अफ्रीका में १०% नवजात शिशुओं में एड्स के विषाणु पाये गये हैं। वैज्ञानिकों ने तो यहां तक कह दिया है कि यदि ऐसा ही रहा तो मानव रेस ही समाप्त हो जायेगी।

दूषित मनःस्थित

कहते हैं जैसी मनःस्थित होती है वैसी वृत्ति व दृष्टि हो जाती है। मनःस्थित को श्रेष्ठ व पवित्र बनाने की बहुत-सी व्यवस्थाओं का व्यावहारिक उपयोग बताया गया है। पर आज हम देखते हैं कि दूषित मनःस्थित से उत्पन्न संतान की वृत्ति कैसी होगी। फिर मानव यह आशा करता है कि उसकी संतान श्रेष्ठ संस्कारों वाली हो। यह हो ही नहीं सकता। शास्त्रों में कलियुगी संतानों की तुलना बिच्छू-टिंडन से की गयी है जिसका अर्थ है सदैव दुःख देने वाली सृष्टि, जैसा कि आजकल सर्वत्र देखा जा सकता है। यह शाश्वत सत्य है कि जिन वृत्तियों से रचना रची गयी है, वही वृत्तियां ही कर्मक्षेत्र पर रचना द्वारा प्रदर्शित होंगी।

आज हम देखते हैं कि कम उम्र में ही बच्चों में सेक्स हारमोन विकसित हो जाते हैं जिसका मूल कारण है अनुवंशिकता व आज का सेक्स-प्रधान वातावरण। बच्चों को विकारों से उत्पन्न कर दूषित विचारधारा से विकसित करते हैं और फिर कामना करते हैं सदाचारी बच्चों की। आज दृष्टि ही अपवित्र हो गयी है तो वृत्ति भी अपवित्र होगी ही। जैसी दृष्टि वैसी वृत्ति, तो कृति भी उसी प्रकार की होगी न।

विज्ञान तब और अब

आज भलीभांति स्पष्ट हो चुका है कि कुछ हजार वर्ष पूर्व आज से भी विकसित विज्ञान मौजूद था। मिस्र के पिरामिड जिनके एक भी पत्थर को उठाने वाली आज भी कोई क्रेन मौजूद नहीं है। जरमन में कोयले की खान से प्राप्त स्टील का क्यूब, बगदाद में हजारों वर्ष पुरानी विद्युत घंटी आदि नाना प्रकार के साक्ष्य स्पष्ट करते हैं कि इसके पूर्व भी विज्ञान चरमसीमा पर था। चिली, यूनान और ब्राजील के त्रिकोण पर मिली मानव निर्मित गुफा जोकि एक विशाल सभाकक्ष लगता है जिसमें बैठक व्यवस्था, हवा के जाने आने की व्यवस्था है। उसमें प्राप्त सोने के कागजों पर लिखी गयी किताब जिसमें अक्षर खुदे हुए हैं। वहां प्राप्त प्लास्टिक की विशाल मेज व सोने का पिरामिड आदि कुल मिलाकर भारतीय शास्त्रों में वर्णित विमानों आदि की बातों की सत्यता की गारंटी करते हैं।

वास्तव में अभी विज्ञान अत्यधिक उन्नति करेगा। पुष्पक विमान जैसे विमान बनेंगे जो अटामिक ऊर्जा से अत्यधिक वेग से चलेंगे। पर इसी बीच होगा सृष्टि में विनाशकारी परिवर्तन। फलस्वरूप सतोप्रधान आत्माएं धरा पर आएंगी और अन्य तमोगुणी आत्माएं परमधाम में विश्राम करेंगी। इन्हीं सतोगुणी आत्माओं को देवता कहा जाता है। कहते भी हैं सतयुग में देवताएं निवास करते हैं। कहा भी जाता है कि ईसा से ३००० वर्ष पूर्व पैराडाईज अर्थात् स्वर्ग था।

महाभारत काल की पुनरावृत्ति

आज हम देखते हैं कि मनुष्यों में नैतिकता क्षीण होती जा रही है। समस्त मानव जाति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों के वशीभूत होकर अपने स्वार्थ सिद्धि में लगी है। इंद्रिय सुख भोगने की प्रबल इच्छा के कारण शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दुःख व कष्ट से ग्रसित हो रही है। क्या इससे भी अधिक पतन बाकी है? लगता है महाभारत काल की पुनरावृत्ति हो रही है। एक तरफ हैं कौरव अर्थात् शाश्वत नियमों के विरुद्ध आचरण करने वाले, दूसरी तरफ हैं धर्म सम्मत गीता के अनुसार अपने जीवन को ढालने वाले पाण्डव और तीसरी ओर हैं यादव अर्थात् आधुनिक परमाणु अस्त्र, अणु शस्त्र, स्टारवार, रासायनिक शस्त्रों के मद में चूर रहने वाले।

हम ब्रह्मा-वत्स कितने भाग्यशाली हैं जिनका सारथी स्वयं भगवान् है। हमें निश्चित रूप से पता है विजय हम पाण्डवों की है। यह विजय कल्प-कल्प हमको ही मिलती है। पाण्डवों की ही प्रीति बुद्धि गायन है। दुनिया वाले वर्तमान व आने वाले समय से कितना घबराते हैं जबकि हम ब्रह्मा-वत्सों को तो मालूम ही है कि वर्तमान में यह सृष्टि धर्मराजपुरी में परिवर्तित हो गयी है। सभी को अपनी आत्मा के हिसाब-किताब चुक्तु करना जो है।

सामयिक आवश्यकता

आज धर्मग्लानि के समय परमात्मा अपने वादे के अनुसार सच्चा-सच्चा गीत-ज्ञान देने के लिए गुप्त रूप से कार्य कर रहे हैं। उनके द्वारा दिये जा रहे सत्य-ज्ञान को परखकर धारण करना ही आज समय की मांग है। केवल एक अर्जुन को गीता-ज्ञान मिलने से सत्य धर्म की स्थापना नहीं हो सकती। जब अनेक आत्माएं ज्ञान और योग से सतोगुणी बनेंगी तभी सत्धर्म की स्थापना होगी। आज अनासक्त वृत्ति वाले मन, वचन और कर्म से, दृष्टि-वृत्ति से पवित्र आत्माओं का समय आह्वान कर रहा है जो गीता का परिणाम है। यह युग परिवर्तन का समय है। युग अवश्य ही बदलेगा क्योंकि समय परिवर्तनशील है। जो कल था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल न होगा।

वास्तव में आत्मा स्वयं अपना मित्र व शत्रु है। अतः स्वयं को अपना मित्र समझकर काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार जैसे राक्षसों से छूटने के लिए परमात्मा द्वारा सिखाये जा रहे ज्ञान को धारण कर राजयोग का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए ताकि आत्मा पर अनेक जन्म-जन्मांतर का लगा मैल साफ हो सके। क्योंकि समस्त आत्माओं के वापस जाने का अब समय बहुत नजदीक आ गया है। आत्माओं के प्रियतम परमपिता परमात्मा स्वयं कहते—"बच्चो, अब घर वापिस जाने का समय आ गया है। अपने को आत्मा समझ मुझ पिता और स्व के घर परमधाम को याद करो। मैं तुम सब बच्चों को लेने आया हूं। मच्छरों सदृश्य उड़ाकर ले जाऊंगा...।" अतः अपने को स्वर्णिम दुनिया में आने का पात्र बनाने के लिए परम पवित्र परमपिता से प्रीति की डोर जोड़कर पवित्र बनना व बनाने का पुरुषार्थ तेज कर देना ही हितकर होगा। □

पृष्ठ ७ का शेष

तो शारीरिक आवश्यकताओं का महत्व कम न करते हुए भी उन आवश्यकताओं की उचित पूर्ति के लिये और पूर्ति से संतोष (Satisfaction) पाने के लिये आत्मा को बलवान और चरित्रवान बनाना है। 'राज्य' (शरीर) को ठीक करने के लिए राजा (आत्मा)को ठीक करना है।

वर्तमान समय यह दिशा बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि मानवपतन की चरमसीमा कलियुग के अंत में परमपिता परमात्मा ही आत्माओं को पुनर्जीवित (rejuvinate) करने के लिए ज्ञान और योग की शिक्षा देते हैं। क्योंकि लड़खड़ाकर नीचे गिरता हुआ न निर्जीव पत्थर और न सजीव मनुष्य ही अपने आप ऊपर जा सकता है। उसे किसी सहारे की आवश्यकता होती है। परंतु जहां निर्जीव पत्थर का ऊपर जाने में स्वयं का कोई पुरुषार्थ नहीं होता और उसे कोई दूसरा ही उठाकर ऊपर ले जाता है वहीं सजीव मनुष्य को ऊपर जाने का केवल सहारा मात्र मिलता है, जाना उसे स्वयं पड़ता है। परमपिता परमात्मा भी आकर हम मनुष्यात्माओं को ऐसा ही सहारा देते हैं। ज्ञान और योग सिखाते हैं जिसे सीखकर आत्मा में वह बल भरता है, पवित्रता आती है जिससे हमें स्वस्थ तन, मन, धन (Health, Wealth, Happiness) सभी भरपूर मात्रा में मिलता है। परंतु इन सबके लिए पुरुषार्थ आत्मा को ही करना पड़ता है जिसको आध्यात्मिक पुरुषार्थ की संज्ञा दी जाती है। शरीर तो इसमें सहयोगी रूप से ही काम करता है। इसीलिये आध्यात्मिक पुरुषार्थ का स्थान शारीरिक पुरुषार्थ से ऊंचा है। □

पृष्ठ १२ का शेष

ही बेचैन रहती हैं। वह जमाना था सतयुगी स्वर्ग का अथवा वैकुण्ठ का जिसमें सर्वगुण संपन्न, सोलह कला संपूर्ण, संपूर्ण निर्विकारी, अति सुंदर एवं आकर्षक-मूर्त्त देवता श्री राधे-श्रीकृष्ण अथवा श्री लक्ष्मी-श्री नारायण राज्य करते थे और जिसमें हर तरफ आत्मिक एवं प्राकृतिक सौंदर्य ही दिखाई देता था। उसी दिव्य सौंदर्य की झलक के लिये मनुष्य-मात्र की आंखें व्याकुल हैं और उसी झलक को निहार लेने के बाद ही वह तृप्त हो पायेंगी।

सौभाग्य की बात यह है कि आत्मिक एवं प्राकृतिक सौंदर्य के बीज-रूप निराकार परमात्मा शिव वर्तमान समय प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा अपना दिव्य और अलौकिक कार्य कर रहे हैं। जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही सृष्टि पर फिर से वैकुण्ठ की स्थापना हो जायेगी जिसमें सौंदर्य ही सौंदर्य दृष्टिगोचर होगा! परंतु उस दिव्य सौंदर्य की झलक का साक्षात्कार केवल वही आत्माएं कर पायेंगी, जो अभी से अपने-आपको परमात्मा द्वारा दिये गये ज्ञान और योग के बल से दिव्य एवं सुंदर बना लेंगी। □

हाथरस: अ.भा. युवा अभियान का स्वागत करते हुए युवा मेला अध्यक्ष भ्राता अजय कुमार अरोड़ा जी।

बिलासपुर: 'अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान संबोधित करते हुए जिलाधिकारी भ्राता राकेश बंसल।

अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान' उदयपुर से दिल्ली का ग्रुप फोटो।

दिल्ली (हरिनगर): स्वर्गाश्रम हरिनगर में अभियान के पहुंचने आश्रम के संस्थापक हकीम हरिराम ने युवा भाई-बहिनों का स्व किया। ब्र.कु. शुक्ला जी अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए।

अ.भा. नैतिक जागृति युवा अभियान (सिंगरौली से दिल्ली) द्वारा आयोजित समारोह में उपस्थित हैं भ्राता आर.के. गोयल, प्रशासक नगरनिगम, भोपाल ए.एन. तिवाड़ी, आयुक्त तथा युवा यात्री।

विरमगाम: अ.भा. नैतिक जागृति अभियान के अंतर्गत आय कार्यक्रम में मुख्य मैजिस्ट्रेट महेन्द्र सिंह जी भाषण करते हुए। सरला, शारदा, जयंत भाई तथा ब्र.कु. नेहा बहन मंच पर

युवा अभियान दल नवनिर्मित सेवाकेंद्र जेतपुर (दिल्ली) में।

बुरहानपुर में अ.भा. युवा अभियान का उद्घाटन दृश्य। भ्राता सेमवाल ए.डी.एम. जी शुभारम्भ करते हुए।

नदबई (भरतपुर): आगरा-नैनीताल-दिल्ली युवा अभियान के नदबई आगमन पर विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को संबोधित करती हुई ब्र.कु. विमला बहिन।

शाहदरा (दिल्ली) में युवा रैली का स्वागत दृश्य। मंच पर युवा भाई-बहनों के साथ मजदूर कांग्रेस युवा दल के अध्यक्ष भ्राता तेजराम वर्मा, भ्राता राजन खन्ना तथा भ्राता राजेश कपूर, दादी कमलमणि, कमला बहन तथा अन्य विराजमान हैं।

योग और सेवा का बैलेंस

ब्र० कु० राजकुमार मित्तल दिल्ली

- सेवा ही ब्राह्मण जीवन का सर्व श्रेष्ठ कर्म और धर्म है।
- सेवा द्वारा ही हम अपना भविष्य पद—भाग्योदय करते हैं।
- संगम युग के उत्तम सेवाधारियों का ही सारे कल्प गायन और पूजन होता है।
- प्रभावी (उत्तम) सेवा यानी प्रत्यक्ष फल अर्थात् बाप सदृश बनने की प्रेरणा प्राप्त कर, जीवन ऐसा बनाने के लिए सेवित आत्मा का अग्रसर होना।
- हमारे संकल्प, हमारी वाणी, हमारा हर कर्म अन्य आत्माओं के कल्याणार्थ ही हो।

सेवा तो हर ब्राह्मण करता है, परन्तु परिणाम कम बच्चे ही निकाल पाते हैं अथवा जैसा बाबा चाहते हैं वैसा नतीजा नहीं निकाल पाते। कारण है योग और सेवा के बैलेन्स की कमी।

ब्राह्मणों में अनेक आत्माएं तो यह विचार रखती हैं कि अमृत बेले बीज रूप शक्तिशाली स्थिति द्वारा सारे विश्व की आत्माओं प्रति शुभ-कामना और शुभ-भावनाओं के प्रकम्पन प्रसारित करना ही सर्वोत्तम सेवा है। इस सेवा द्वारा ही वह अपने ब्राह्मण जीवन को धन्य मानते हैं। क्या हम ऐसी सेवा सतत (लगातार) कर सकते हैं? ब्राह्मण कोई सन्यासी तो हैं नहीं जो घर-बार कार्य व्यवहार धन्धाधोरी छोड़ कर सेवा करें। सेवा सतत होती ही रहे। उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते व्यवहार में बर्तते, संपर्क संबंध में आते, यहाँ तक कि सुषुप्तावस्था में भी सेवा चालू रहे। स्वप्न भी आयें तो सेवा के ही आयें।

ऐसी लगातार सेवा तभी संभव है जब हम पूर्णरूपेण बाबा में दृढ़ निश्चयी और उनके द्वारा स्थापित यज्ञ के प्रति समर्पण भाव रखते हों अर्थात् मन, वचन कर्म से तथा तन, मन, धन से यज्ञ सेवार्थ जुटे रहें। कार्य-व्यवहार में बर्तते हमारे नयनों में बाबा और सेवा (आत्माओं का कल्याण) करने की भावना, सदा, प्रबल और ज्वलन्त रहे। हमारा हर संकल्प, हर बोल, हर कर्म कल्याणकारी तथा अनुकरणीय हो। हमारी वृत्ति, दृष्टि, कर्म असाधारण हो, रूहानियत से ओत-प्रोत हो। उसमें एक विलक्षणता की अनुभूति न केवल हमें बल्कि जो भी हमारे संपर्क, संबंध में आते हैं, सभी को आये। एक विशिष्ट प्रेम, स्नेह, दया, करुणा और ममता भरी, खींचने वाली हमारी दृष्टि पड़ते ही आत्मा शीलता, इच्छापूर्ति तथा वरदान प्राप्ति का अनुभव करे। ऐसा चुम्बकीय आकर्षक वातावरण का घेरा हमारे साथ-साथ चले, जो आत्माएं समझें कि कोई फरिश्ता यहां से निकला है।

सेवा में ज़ोर ज्ञान के सिद्ध करने पर नहीं, अनुभूति पर हो। यह सब तभी संभव है जब हम अपने ज्ञान, बुद्धिमत्ता, ओहदा, वैभव, शक्ति, व्यक्तित्व का भान छोड़ स्वयं को बाबा के सान्निध्य (साथ-साथ) रहकर ज्ञान सुनायें, दृष्टि दें, वृत्ति से वायब्रेशन दें। जब तक बाबा साथ नहीं हमारी दृष्टि, वृत्ति, कृति प्रभावशाली व हृदय को छूने वाली हो ही नहीं सकती। समर्पण भाव का अर्थ ही है स्वयं को निमित्त मात्र समझ बाबा के कर्त्तव्य में प्रवृत्त होना।

ऐसी आत्मा की दृष्टि-तपिश हर, शीतल करने वाली, बोल मधुर, धीमे स्वर में तथा वरदानी होंगे

सेवा में थकावट अथवा भारीपन तभी होता है जब हम बाबा का साथ (याद) छोड़ अपने बल-बूते पर करने लगते हैं। जब उत्तरदायित्व लेने के लिए बाबा सदैव ही तैयार है तो फिर हम व्यर्थ ही बोझिल क्यों होते हैं? ऐसी सेवा करने से सदा हल्कापन, अपारखुशी, सदा उमंग, उत्साह तथा उत्तरोत्तर प्राप्ति और उन्नति का अनुभव होता है। तन और मन खुशी की लहरों में लहराता रहता है।

प्रभावी और सफल सेवा का मूल मन्त्र है 'सदैव योगयुक्त स्थिति में स्थित होकर ही सेवा के क्षेत्र पर उतरना।''

संक्षेप में यही है योग और सेवा का बैलेंस।

ऊटी में भ्राता एच. एम. राज़, सदस्य विधान सभा, युथ रैली को सम्बोधित करते हुए।

दिल्ली (बुद्ध विहार) में संगीत कला क्लब में प्रोग्राम के पश्चात् युवा भाई-बहिनें सहयोग पत्र भरवाते हुए।

योग और सेवा का बैलेंस

ब्र० कु० राजकुमार मित्तल दिल्ली

- सेवा ही ब्राह्मण जीवन का सर्व श्रेष्ठ कर्म और धर्म है।
- सेवा द्वारा ही हम अपना भविष्य पद–भाग्योदय करते हैं।
- संगम युग के उत्तम सेवाधारियों का ही सारे कल्प गायन और पूजन होता है।
- प्रभावी (उत्तम) सेवा यानी प्रत्यक्ष फल अर्थात् बाप सदृश बनने की प्रेरणा प्राप्त कर, जीवन ऐसा बनाने के लिए सेवित आत्मा का अग्रसर होना।
- हमारे संकल्प, हमारी वाणी, हमारा हर कर्म अन्य आत्माओं के कल्याणार्थ ही हो।

सेवा तो हर ब्राह्मण करता है, परन्तु परिणाम कम बच्चे ही निकाल पाते हैं अथवा जैसा बाबा चाहते हैं वैसा नतीजा नहीं निकाल पाते। कारण है योग और सेवा के बैलेन्स की कमी।

ब्राह्मणों में अनेक आत्माएं तो यह विचार रखती हैं कि अमृत बेले बीज रूप शक्तिशाली स्थिति द्वारा सारे विश्व की आत्माओं प्रति शुभ-कामना और शुभ-भावनाओं के प्रकम्पन प्रसारित करना ही सर्वोत्तम सेवा है। इस सेवा द्वारा ही वह अपने ब्राह्मण जीवन को धन्य मानते हैं। क्या हम ऐसी सेवा सतत (लगातार) कर सकते हैं? ब्राह्मण कोई सन्यासी तो हैं नहीं जो घर-बार कार्य व्यवहार धन्धाधोरी छोड़ कर सेवा करें। सेवा सतत होती ही रहे। उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते व्यवहार में बर्तते, संपर्क संबंध में आते, यहाँ तक कि सुषुप्तावस्था में भी सेवा चालू रहे। स्वप्न भी आयें तो सेवा के ही आयें।

ऐसी लगातार सेवा तभी संभव है जब हम पूर्णरूपेण बाबा में दृढ़ निश्चयी और उनके द्वारा स्थापित यज्ञ के प्रति समर्पण भाव रखते हों अर्थात् मन, वचन कर्म से तथा तन, मन, धन से यज्ञ सेवार्थ जुटे रहें। कार्य-व्यवहार में बर्तते हमारे नयनों में बाबा और सेवा (आत्माओं का कल्याण) करने की भावना, सदा, प्रबल और ज्वलन्त रहे। हमारा हर संकल्प, हर बोल, हर कर्म कल्याणकारी तथा अनुकरणीय हो। हमारी वृत्ति, दृष्टि, कर्म असाधारण हो, रूहानियत से ओत-प्रोत हो। उसमें एक विलक्षणता की अनुभूति न केवल हमें बल्कि जो भी हमारे संपर्क, संबंध में आते हैं, सभी को आये। एक विशिष्ट प्रेम, स्नेह, दया, करुणा और ममता भरी, खींचने वाली हमारी दृष्टि पड़ते ही आत्मा शीलता, इच्छापूर्ति तथा वरदान प्राप्ति का अनुभव करे। ऐसा चुम्बकीय आकर्षक वातावरण का घेरा हमारे साथ-साथ चले, जो आत्माएं समझें कि कोई फरिश्ता यहां से निकला है।

सेवा में ज़ोर ज्ञान के सिद्ध करने पर नहीं, अनुभूति पर हो। यह सब तभी संभव है जब हम अपने ज्ञान, बुद्धिमत्ता, ओहदा, वैभव, शक्ति, व्यक्तित्व का भान छोड़ स्वयं को बाबा के सान्निध्य (साथ-साथ) रहकर ज्ञान सुनायें, दृष्टि दें, वृत्ति से वायब्रेशन दें। जब तक बाबा साथ नहीं हमारी दृष्टि, वृत्ति, कृति प्रभावशाली व हृदय को छूने वाली हो ही नहीं सकती। समर्पण भाव का अर्थ ही है स्वयं को निमित्त मात्र समझ बाबा के कर्त्तव्य में प्रवृत्त होना।

ऐसी आत्मा की दृष्टि-तपिश हर, शीतल करने वाली, बोल मधुर, धीमे स्वर में तथा वरदानी होंगे

सेवा में थकावट अथवा भारीपन तभी होता है जब हम बाबा का साथ (याद) छोड़ अपने बल-बूते पर करने लगते हैं। जब उत्तरदायित्व लेने के लिए बाबा सदैव ही तैयार है तो फिर हम व्यर्थ ही बोझिल क्यों होते हैं? ऐसी सेवा करने से सदा हल्कापन, अपारखुशी, सदा उमंग, उत्साह तथा उत्तरोत्तर प्राप्ति और उन्नति का अनुभव होता है। तन और मन खुशी की लहरों में लहराता रहता है।

प्रभावी और सफल सेवा का मूल मन्त्र है 'सदैव योगयुक्त स्थिति में स्थित होकर ही सेवा के क्षेत्र पर उतरना।"

संक्षेप में यही है योग और सेवा का बैलेंस।

ऊटी में भ्राता एच. एम. राज, सदस्य विधान सभा, यथ रैली को सम्बोधित करते हुए।

दिल्ली (बुद्ध विहार) में संगीत कला क्लब में प्रोग्राम के पश्चात् युवा भाई-बहिनें सहयोग पत्र भरवाते हुए।

वास्तविक दशहरा और सच्ची दीवाली कैसे मनाएं?

—ब्र० कु० आत्मप्रकाश, आबू पर्वत

आज प्रकाश निराशा के सागर में डूबा हुआ प्रतीत हो रहा था। व्यापार में घाटा हो जाने के कारण चिन्ता के चक्रव्यूह में फंस गया था। अरमान पूरे न होने के कारण उसका अच्छा खासा चेहरा बुझा-बुझा, दिखाई दे रहा था। उसका मित्र दीपक उसके कमरे में प्रवेश करता है।

दीपक—(अचरज से)—क्या बात है प्रकाश, आज आपके मुखमुद्रा पर उदासी की छाया क्यों?

प्रकाश—(दुखद स्वर से)—क्या बताऊं, मैं बहुत अभागा हूँ, जो भी कार्य करता हूँ उसमें असफलता ही मिलती है। इसलिए किसी भी काम में मन नहीं लगता है, मेरा भविष्य अन्धकारमय है। कल अमीरी थी, न जाने वह आज कहाँ खो गई।

दीपक—प्रकाश, इस जीवन रूपी समुद्र में न जाने कब जिन्दगी की कौनसी लहर मनुष्य को कहाँ ले जाय। हाँ, इतना ज़रूर है जीवन परिवर्तनशील है इसलिए हमें प्रयत्नशील रहना आवश्यक है।

प्रकाश—दीपक भैया, आपकी बात सत्य है, लेकिन मेरे लिए यह हार का अन्धकार असहनीय हो चुका है। सफलता का रास्ता कोई नज़र नहीं आ रहा है।

दीपक—प्रकाश, यह कठोर सत्य है कि "हार और जीत" जीवन के दो पहलू हैं। सदा हमारी हार ही होती रहे यह हो नहीं सकता। इस जीवन की लम्बी यात्रा में कई उतार-चढ़ाव आते रहते हैं लेकिन हमें हर परिस्थिति को मन का सन्तुलन रखते हुए पार करना है।

प्रकाश—भैया, मैं ये सब बातें समझता हूँ, लेकिन.....

दीपक—प्रकाश, हमें कभी भी साहस का दामन नहीं छोड़ना चाहिए। देखो, जुगनू तभी चमकता है जब तक वह उड़ता रहता है, वही हाल हमारे जीवन का है। जब हम रुक जाते हैं तो अन्धेरे में पड़ जाते है, इसलिए कभी भी रुकना नहीं चाहिए, रुकना अर्थात् भाग्य को ठुकराना।

प्रकाश—लेकिन यदि भाग्य हमें साथ न दे तो क्या करें?

दीपक—भाग्य को दोष देकर भागना ये वास्तविकता नहीं। अगर हम निरन्तर परिश्रम करते रहें तो भाग्य ज़रूर करवट बदलता है। अच्छा, छोड़ो इन गम की बातों को, ये तो बताओ कल दीवाली का त्योहार है, कुछ तैयारी भी की है त्योहार मनाने के लिए।

प्रकाश—(चौंककर)—क्या, सचमुच कल ही दीवाली का त्योहार है? भैया, इस मानसिक तनाव के कारण मैं अपनी जीवन-रूपी नाव ठीक चला नहीं पा रहा हूँ, दिमाग कुछ ठीक काम नहीं करता है, जिससे कई बातें भूल जाता हूँ।

दीपक—प्रकाश, मानसिक तनाव से व्यक्ति नीरस और शुष्क बन जाता है जिससे घर का वातावरण भी गमगीन,चिन्तामय हो जाता है। जीवन में हंसी, खुशियाँ तथा उल्लास भी चाहिए। इसलिए ही तो दीवाली जैसे त्योहार, मनाएँ जाते हैं क्योंकि त्योहार हर्ष और उल्लास का प्रतीक है।

प्रकाश—भैया, दीवाली त्योहार का नाम सुनते ही मन खुशी में लहराने लगता है।

दीपक—दीवाली एक ऐसा त्योहार है जिसका नाम सुनते ही मन में हजारों दीपक एक साथ जल उठते हैं। भारत के सभी त्योहारों में से दीवाली ही एक ऐसा अनुपम, उल्लासमय त्योहार है जिसके आते ही सभी के जीवन में नया उत्साह छा जाता है। इस त्योहार के पीछे गहन आध्यात्मिक रहस्य छिपा है।

प्रकाश—(उत्सुकता से)—वो कौनसा भैया?

दीपक—वास्तव में दीवाली दीपकों का त्योहार है, इससे घर को आलोकित करते हैं। दीवाली के दिन घरों में रंगरोगन, झाड़पोंछ करके दीप जलाते, फिर लक्ष्मी का आह्वान करते हैं।

प्रकाश—दीपक भैया, दीवाली के पहले दशहरा क्यों मनाते हैं?

दीपक—प्रकाश, कभी भी घर को पहले साफ किया जाता है, सजाया जाता है, फिर ऐसे पवित्र स्थान पर लक्ष्मी का आह्वान करते हैं। इसलिए पहले रावण दुश्मन को जलाकर दशहरा मनाते हैं, तत्पश्चात् दीवाली का त्योहार मनाया जाता है।

प्रकाश—भैया, रावण क्यों जलाया जाता है?

दीपक—रावण अर्थात् रुलाने वाला, रावण के दस सिर 5 नर के विकार और 5 नारी के विकारों का प्रतीक है। रावण हमें राव नहीं बनने देता अर्थात् सदा अपने अधीन रखता है।

प्रकाश—भैया, विकारों ने आत्मा पर कब से राज्य करना शुरु किया?

दीपक—जब देह रूपी घर में आत्मा रूपी दीपक बुझने लगता है तो रावण की विकारों रूपी सेना आत्मा पर आक्रमण करती है। कहते है न—"**जहाँ होता है अन्धेरा, वहाँ होता है भूतों का डेरा।**" तो 2500 वर्षों से इन महाभूतों ने अपना डेरा जमाया हुआ है जिससे देह रूपी बंगला भूत बंगला बन चुका है।

प्रकाश—दीपक भैया, क्या इन भूतों को भगाने का भी कोई उपाय है?

दीपक—हाँ, देह रूपी मकान में आत्मा रूपी दीपक जलाएँ

अर्थात् सच्ची दीवाली मनाएँ। घर-घर में दीपमाला जलाने का अर्थ ही है कि हर देह रूपी घर में ज्ञान की ज्योति से आत्मा रूपी दीपक जलाने का अलौकिक पुरुषार्थ करें। तत्पश्चात् भूतों को भगाने वाले सर्वशक्तिवान परमात्मा शिव से बुद्धि योग लगाएँ, इसे भी दीपक की लौ से उपमा दी जाती है। इसी अर्थ को लेकर, देवताओं के आगे मन्दिर में दिन में भी अखण्ड दीपक जलाते हैं।

प्रकाश—हाँ भैया, मैंने भी देखा है, लेकिन वो देवताओं के आगे ही क्यों जलाते हैं?

दीपक—क्योंकि वर्तमान समय संगम युग में देवी-देवता बनने वाली महान आत्माओं ने देह रूपी मन्दिर में आत्मा रूपी दीपक अखण्ड जगाकर रखने का पुरुषार्थ किया, इसकी वो यादगार आज तक भी चली आ रही है।

प्रकाश—भैया, लेकिन अखण्ड आत्मा रुपी दीपक जगाकर रखने के लिए तो बहुत मेहनत करनी पड़ती होगी।

दीपक—इसमें कोई सन्देह नहीं प्रकाश, दीवाली की रात को जो असंख्य दीपक जलाएँ जाते हैं, उस समय हवा के झोंकों से तथा अन्धेरे से लड़ता प्रत्येक दीपक जन-जन को यही प्रेरणा देता है कि हम निराशा के गहन अन्धेरे में भी अपने विवेक की लौ को बुझने न दें क्योंकि वही उजाला मंजिल तक पहुँचाने में मदद करता है। इसी तरह इस अलौकिक दीपक को सदा जगाकर रखने के लिए संघर्ष के साथ मेहनत तो करनी ही पड़ती है।

प्रकाश—संघर्ष किसके साथ में करना पड़ता है भैया?

दीपक—प्रकाश, कभी गीत सुना होगा आपने कि—"ये कहानी है दीए और तूफान कीं", तो जैसे दीया तूफान के साथ संघर्ष करते हुए भी लगातार लौ से जलता रहता है, तो यहाँ भी माया के अनेक तूफान आते हैं आत्मा रूपी दीपक को बुझाने के लिए अर्थात् माया के साथ हमें संघर्ष करना पड़ता है।

वास्तव में माया से बचकर रहने के लिए देह रूपी घर में सदा रोशनी का होना नितान्त आवश्यक है। जब घर में रोशनी (रो+शनी) न हो तो समझो रूलाने वाला शनी का ग्रह आत्मा को लगा है। ऐसी आत्मा परमात्मा का नाम इस दुनिया में रोशन भी नहीं कर सकती है। प्रकाश, देह रूपी घर में निरन्तर रोशनी होना ही पर्याप्त नहीं है लेकिन दिन-प्रति-दिन वह रोशनी लाईट हाऊस के रूप में सदा बढ़ती ही रहे ऐसा पुरुषार्थ हम करते रहें। लेकिन हाँ, ये कभी न भूलना कि माया के साथ हमारा सदा ही युद्ध है।

प्रकाश—दीपक भैया, वो भला कैसे?

दीपक—परमात्मा शिव कहते है—" मीठे बच्चे—तुम गुप्त योद्धा (Unknown but very Wellknown Warriors) हो, वर्तमान समय माया के साथ तुम्हारा गुप्त युद्ध है, लेकिन जब तुम मायाजीत बनोगे तब विश्व में प्रख्यात हो जाओगे"।

प्रकाश—लेकिन भैया, इस युद्ध में जीतने के लिए कौनसी तैयारी करनी होगी?

दीपक—देखो प्रकाश, आज जिस माया का समस्त विश्व में राज्य है, उसको हमने ललकारा है कि हम मायाजीत बनकर ही रहेंगे। उसके लिए हमें परमात्मा द्वारा सिखाई हुई युद्ध करने की कला को अपनाकर असीम साहस और आत्मविश्वास के साथ विभिन्न दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करना होगा तब ही हम विजयी बन सकेंगे। यह कर्मक्षेत्र ही हमारे लिए युद्ध क्षेत्र है।

प्रकाश—भैया, युद्ध के मैदान में माया रावण से बाक्सींग कैसे शुरु होती है?

दीपक—जब हम शरीर रूपी Box (पेटी) में स्थिति आत्मा रूपी हीरे (Diamond) का भान भूलकर स्वयं को शरीर रूपी Box ही समझने लगते हैं तो माया (रावण) Boxing शुरु करती है। गफलत में होने के कारण पहले ही वार से वह हमें नीचे जमीन पर गिरा देती है और अपने 5 मुख्य डाकुओं की सेना को कहती है इसकी अच्छी तरह से पिटाई करो, जो भी इसके पास अलौकिक खजाने हैं वो सब लूटकर कंगाल बनाओ, इस बेईमान ने मुझे धोखा दिया है। माया के आज्ञानुसार, एक डाकू छाती पर बैठकर गला दबाता है, दूसरा नाक खींचता है, तीसरा कान खींचता है, चौथा पैर खींचता है और पाँचवा बुरी तरह से पीटाई करता है। तो सोचो, उस समय हार खाने वाले की क्या मनोदशा होगी। भगवान का बच्चा होकर भी चेहरा बेहद उदास और परेशान होगा। ऐसे माया लगातार द्वापरयुग से लेकर कलियुग के अन्त तक पीटती ही रही जिससे हम बेहोश हो गए, "मैं आत्मा हूँ" ये होश ही उड़ गया। येतो रहम के सागर पिता परमात्मा की मेहरबानी हुई जिसने ज्ञान की संजीवनी बूटी सुंघाकर हमें होश में लाया और पुनः आत्मा रूपी दीपक जगाया।

प्रकाश—बा परे! इतनी खतरनाक है माया (रावण) मैंने तो कभी सोचा भी न था। लेकिन भैया, हमें मायाजीत बनना होगा तो कैसे युद्ध करें?

दीपक—प्रकाश, युद्ध के मैदान में कभी न भूलें कि—"**जिसका साथी है भगवान, उसको क्या रोकेगा माया के आंधी और तूफान**"। वैसे रूहानी मिलिट्री का पहला मार्शल लॉ (Marshal Law) है—Attention Please अर्थात् "आत्म-अभिमान की स्थिति में स्थिति हो जाओ," इसको पालन करें। फिर साहस और शौर्य के साथ माया को ललकारें कि—हे माया, अब तुम किसी भी रूप में आओ, कैसा भी मुझ पर वार